निर्लज्ज
उग्र

उग्र लिखित

चुम्बन

चुम्बन

चुम्बन

सामाजिक, सुन्दर, सचित्र

नाटक

नाटक

नाटक

आप पढ़िये

सूची

९

मर्मस्पर्शी कहानियां

अवश्य पढ़िये

उग्र-लिखित

महात्मा ईसा

(सचित्र, नाटक)

हमारे साहित्यका प्रत्येक समझदार इस रचनामें एक स्वरसे लेखकका लोहा मानता है। उपन्यास सम्राट प्रेम-चन्दजी 'महात्मा ईसा' को विख्यात बङ्गाली कलाविद् डी० एल० रायके किसी नाटकके जोड़का मानते हैं। इसका दूसरा संस्करण, बड़े ठाट-बाटसे खूब आकर्षक और शुद्ध, हम छाप रहे हैं।

मूल्य २॥)

बीसवीं सदी पुस्तकालय

गऊघाट, मिर्ज़ापुर सिटी

निर्लज्जा ?

१

यजमान—मैंने देखा महाराज—और दूरहीसे देखा—पांच युवक घोड़सवार तेजीसे उसी तालाबकी ओर आ रहे थे जिसके तटके निकट खड़ा होकर घुटनों तक जलके भीतर, मैं अपने अङ्ग अंगोछ रहा था।

पुरोहित—परन्तु, बच्चा; तुम तो कह रहे थे कि तुमने उस तालाबपर अनन्तपुरके प्रसिद्ध और मनस्वी ताल्लुकेदारकी पुत्री और उसकी सखियोंको देखा था। यही बात है न?

यजमान—यह अनन्तपुरकी कुमारी ही की तो कथा है, पहले विस्तारसे नहीं कही थी इसीसे घोड़सवारोंकी चर्चा छूट गयी थी। उन पांचों सवारोंमें सबसे आगे एक दस वर्षकी बालिका मर्दाने और वीर रजपूती बानेमें थी, उसके पीछे अनन्तपुरकी युवती कुमारी थी जिसकी बायीं ओर उसका छोटा और युवक भाई था। उन दोनों के पीछे उसी बीर-बानेमें कुमारीकी दो सखियां थीं।

पुरोहित—सखियाँ भी मर्दाने वेशमें घोड़ेपर सवार, बालिका भी, युवती कुमारी भी और उसका युवक अनुज भी? आश्चर्य! मुसलमानी शासनकालसे आरम्भ कर अंग्रेजी राज्यके आगमन काल तक, बल्कि आजके इस सन् १८५६ ई० तक, हमारे इस अवध प्रान्तमें ऐसा एक भी बड़ा या छोटा आदमी नहीं पैदा हुआ था जिसने अपनी लड़कियोंको ऐसी मर्दानी आजादी दी हो।

यजमान—देवता, पहले पूरी कथा तो सुन लीजिये। अभीसे आश्चर्य प्रकट कर और आलोचनात्मक प्रश्न कर मेरे हृदयमें निराशाके तूफान न उठाइये।

पुरोहित—अच्छा, कहो भैया। तुम प्रसन्न रहो,

फूलो-फलो मेरे बच्चे ? ऐसी बात क्यों कहते हो—ईश्वर न करें कभी तुम्हारे मनमें निराशाके तूफ़ान उठें। हां, तो फिर क्या हुआ उन घोड़सवारोंका ?

यजमान—मेरे देखते ही देखते वे सब तालाबके पास आ पहुंचीं। वह स्थान अनन्तपुरसे आधे कोसकी दूरीपर था। तालाब पक्का था और उसके पूर्वीय घाटपर एक छोटा-सा शिव-मन्दिर था।

पुरोहित—अरे बेटा, तुम तो मुझे इस तरह बता रहे हो, मानों मैंने उस सरोवर और शिवालयको देखा ही नहीं है। मैं उस स्थानको खूब जानता हूं। वह उन्हीं अनन्तपुरवालोंके पूर्वजोंका बनवाया हुआ है।

यजमान—अच्छा, इसके बाद वे पांचों अपने-अपने घोड़ोंसे नीचे उतरे, घोड़ोंको उन्होंने पासके वृक्षोंमें बांध दिया। फिर वे भी तटपर, मुझसे थोड़े फासलेपर, आ खड़े हुए। अब तक मैंने उन पांचोंको पुरुष ही समझा था, मगर सन्निकटसे देखनेपर मुझे कुछ सन्देह हुआ। इतनेमें उस छोटी बालिकाने कुमारीको सरोवरमें विकसित कमलोंकी ओर दिखाकर कहा—

"दिदिया, बस वैसेही—वह सामने देख !—पांच सुन्दर-सुन्दर और खिले हुए कमल मुझे ला दे ।"

"मैं लादूं ?" कुमारीने मुस्कराकर अपनी छोटी बहनसे पूछा—"अरी मैं भींग न जाऊंगी । यह पाग, यह चूड़ीदार पाजामा, अंगा, कमरबन्द सब नष्ट न हो जायंगे ।"

"तब भैयाको भेजो दीदी," बालिकाने खिलकर कहा—"देखती नहीं हो, कैसे सुन्दर फूल हैं। पांचमेंसे एक तो मैं अपने घोड़ेके माथेपर सजाऊंगी, दूसरा अपने और तीन फूल बाबाके लिए ले चलूंगी। वे शङ्करकी उपासनाके समय इन सुन्दर कमलोंको देखकर प्रसन्न हो उठेंगे ।"

"तब तू ही जाकर तोड़ क्यों नहीं लाती ?" भाईने बालिकाको छेड़ा—"सजेगी तू, तेरा घोड़ा और बाबा और उनके शङ्कर; भला, इनके लिये हम अपने कपड़े क्यों खराब करें ? क्यों बहन ?"

"ये न जायंगे ।" कुमारीने सखियोंकी ओर देखा—"तुममेंसे कोई जाकर शारदाके लिये सरोज तोड़ लाओ ।"

इसपर वे मर्दानी सखियां मेरी ओर देखकर जरा सकुचायीं। उन्होंने इशारे ही इशारे राजकुमारीसे मानो यह कहा कि इस भले आदमीके सामने, इस वेशमें हम कैसे तालाबमें घुसें ?

मैं उनकी लज्जाका कारण समझ गया। मैंने कुमारीके भाईसे कहा—आप लोग व्यर्थ ही अपने कपड़े न भिगोवें, मैं तो अभी जलहीमें हूं। ठहरिये—बालिकाके लिये पांच-सात बनज मैं ही लाए देता हूं।

इसके बाद, उनके उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही, मैं पुनः जलमें घुस पड़ा, तैर चला और कुछ ही क्षणोंमें बालिकाकी इच्छासे द्विगुण कमल दल लेकर तटपर आ गया। बालिका उन सुन्दर पुष्पोंको देखकर रोम-रोमसे खिल उठी। उसकी उस समयकी एक सरल चितवनमें मेरे लिये कोटि-कोटि धन्यवाद थे।

पुरोहित—छोटे बच्चे फूलोंको बहुत प्यार करते हैं, क्योंकि वह स्वयं फूलों-से होते हैं।

यजमान—इसके बाद, उन्होंने मेरा परिचय मुझसे पूछा और मैंने उनका उनसे। सखियां, कुमारी और

कुमार भी मेरे उस साधारण कर्मसे बहुत कृतज्ञ हुए। उन्होंने बार-बार यही कहा कि यदि मैंने कुमारी शारदाके लिये कमल न ला दिये होते तो उनमेंसे किसी एकको अपने कपड़े अवश्य नष्ट करने पड़ते। क्योंकि शारदाजी बिना कमलोंको पाये सन्तुष्ट होतीं ही न।

पुरोहित—हूं।

यजमान—इसके बाद देवता, मेरा मन कुमारीकी ओर आकृष्ट हो गया। मैंने मन ही मन यह निश्चय किया कि मैं उनके बारेमें अधिकसे अधिक जांच पड़-ताल करूंगा। मैंने जांचा भी। आस-पासके गांव-वालोंने बतलाया कि कुमारीमें कोई दोष नहीं है, सिवा इसके कि वह आरम्भ हीसे परदेसे दूर रहा करती हैं। मगर, गांववालोंने यह भी कहा कि यह छोटा दोष नहीं है। इसीके कारण कुमारीको वर नहीं मिल रहे हैं। इसीके कारण उनके विरुद्ध इधर कुछ दिनोंसे कुछ लोग आड़े-कोनेमें फुसफुसाया भी करते हैं। क्योंकि अब वह बालिकासे युवती हो चली हैं; और साधारणतः, इधरके लोग उस युवतीको निर्लज्जा ही समझते हैं जो मर्दोंके

आगे निःसङ्कोच हँस-बोल और मुंह खोलकर घूम सके।

पुरोहित—यही तो तुम्हारे पिताका भी एतराज़ है भैय्या। यह वह मानते हैं कि अनन्तपुरवालोंका खान्दान ऊंचा और मान बड़ा है। पर ऐसी मर्दानी लड़कीको अपनी वधू बनाकर घरमें लानेसे वे हिचकते हैं। मगर, इधर मेरी ओर देखो! उदास न होओ। उनके हिच-कनेपर भी मैं नहीं हिचकता। खासकर अनन्तपुरके श्रीमान् रघुनाथसिंहकी पुत्रीके विषयमें। रघुनाथ मेरे गुरु-भाईके यजमान हैं। अतः मैं उनके साधु स्वभाव और परिवारके बारेमें भी तुम्हारे स्वभाव और परिवार से कम नहीं जानता। दुनिया चाहे जो कहे—और वह कुछ भी कहनेके लिये सदा स्वतन्त्र है—पर केवल ठाकुर रघुनाथसिंहके स्वभावका जो कुछ मुझे पता है उसीके बलपर मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि उनकी लड़कीमें कोई वैसा दोष हो ही नहीं सकता जिससे समाज बचना चाहता है। लेकिन देखो क्या होता है। ज़रा एक बार तुम्हारे पितासे पुनः उलझूं तो काम बने।

२

अनन्तपुर ग्रामके बाहर खड़े आश्चर्य चकित भावसे दो ग्रामीण बातें कर रहे थे—

"पांच दिनों बाद बारात विदा हुई है।"

"अरे भाई यह राजा-रईसोंका शादी-व्याह है, इन्हें कोई कमी है। जैसे हमारे ठाकुर रघुनाथसिंह मालदार, प्रतापी और बड़े हैं प्रायः वैसे ही श्रीगढ़के ठाकुर दिग्गज-सिंह भी हैं।"

"मगर विचित्र यह व्याह हुआ है। सुना है लड़के-के बापने लड़कीके पितासे कन्याकी याचना की थी।"

"हां—ठीक है, देवना नाऊ परसों मेरे दरवाजेपर सारी बातें सुना गया था। उसने कहा कि जबसे ठाकुर रघुनाथसिंहको यह मालूम हुआ कि लोग बे-पर्दगीके कारण उनकी लड़कीपर सन्देह करते हैं तबसे उन्होंने यही प्रतिज्ञा की थी कि अब जब कोई सात बार दांत निकालकर उनकी कन्याकी भीख मांगेगा तभी वह कन्या-दान देंगे। हुआ भी वही। यद्यपि कुमारी राधाका

ब्याह उनकी वय अट्ठारह वर्षकी होनेपर हुआ, मगर हुआ वैसे ही जैसे ठाकुर रघुनाथसिंह चाहते थे।"

"ऐसे अच्छे घरमें और ऐसे सुन्दर वरसे ब्याह करनेपर भी उन्होंने तिलक और दहेजमें एक फूटी कौड़ी भी नहीं दी। यह भी एक प्रकारसे बिलकुल नयी बात है।"

"तिलक और दहेजकी प्रथाके तो वह सदासे ही विरोधी रहे हैं। वह हमेशासे यही कहते हैं कि कन्या ऐसे रत्नको किसीको सौंपनेके पूर्व रिश्वतकी तरह तिलक या दहेज देना स्त्री जातिका सरासर अपमान करना है। उन्हें गुजरातियोंकी वह चाल बहुत पसन्द हैं जिसके अनुसार वर-पक्षके प्राणी कन्या-पक्ष वालोंसे कर बद्ध हो कर कन्या-रत्नकी भीख मांगते हैं।"

"मगर यह तो बताओ कि राधाका ब्याह किस देश-वालोंकी प्रथाके अनुसार हुआ है?"

"मैं तो गया नहीं था उनके द्वारपर या मण्डपमें। पर मैंने सुना है, कन्या वैसे ही खुले भावमें मण्डपमें आयी थी। उसके वस्त्र मर्दाने अवश्य नहीं थे उस

समय, पर मण्डपमें भी उसकी कमरमें तलवार लटक रही थी।"

"किसीने कोई एतराज़ नहीं किया ?"

"नाः—क्योंकि हमारे ठाकुर साहबने श्रीगढ़के ठाकुरोंसे पहले ही यह सब तय कर लिया था। श्रीगढ़-वाले भी लाचार थे। क्योंकि स्वयं 'लड़का' ही राधापर मुग्ध था। वह किसी भी शर्तपर उसका पाणिग्रहण करनेको तैयार था। वह बराबर यही कहता था कि मैं अपने योग्य अर्द्धाङ्गिनी चाहता हूं—यह या वह लौकिक रीति-रिवाज नहीं। यह भी सुना है कि लड़केके हठके कारण ही श्रीगढ़वाले राजी हुए यह सम्बन्ध करनेको। हां लड़केके पक्षमें उधरका पुरोहित भी था।"

"लड़केका नाम क्या है ?"

"सुना है, रक्षपाल सिंह।"

"श्रीगढ़ है कितनी दूर अनन्तपुरसे—तुम्हें मालूम है ?"

"यहांसे बीस कोसपर लखनऊ है और लखनऊसे पचास या साठ कोसपर श्रीगढ़ है। पक्की सड़कके किना-

रेपर बसा है। सुना है कि किसी कामसे रक्षपाल सिंह अनन्तपुरसे बहुत आगे, घोड़ेसे, जा रहे थे। रास्तेमें वह स्नान करनेके लिए उसी तालाबपर ठहरे जो हमारे ठाकुरोंके पुरखोंका बनवाया हुआ है। वहींपर कुमारी राधाको उन्होंने पहले-पहल देखा था।"

"भावी बलवान होता है भैया! नहीं तो अनन्तपुरमें तो सभी राधाके व्याहसे निराश होकर बैठे थे। भला इस ज़मानेमें ठाकुर रघुनाथ सिंहसे उनकी प्रतिज्ञानुसार कौन आता हाथ जोड़कर लड़की मांगने। मगर नहीं; भगवान जिसको जिसके लिए संवारता है वह उसे मिलता ही है।"

३

राधाका पाणिग्रहण तो भावावेश और प्रेमावेशमें श्रीगढ़के अमीरजादे, नवयुवक, क्षत्रिय कुमार रक्षपाल सिंहने कर लिया, मगर बधूके घरमें आते ही समाज उनके हाथोंसे जाता रहा।

यदि आज कोई बड़ा आदमी राधा ऐसी निर्लज्जासे

सम्बन्ध करे, तो संभव है समाजका उसपर उतना रोष न हो। क्योंकि अब लोगोंके विचार बहुत कुछ सुलझ गये हैं और प्रति दिन सुलझते जा रहे हैं। मगर, राधा-रक्षपाल संबन्धकी कहानी तो ठीक बहत्तर बरस पुरानी है। उक्त संबन्ध, सुचतुर कहानी-पाठक समझ गये होंगे, सन् १८५६ ई० में, याने अङ्गरेजी शासनके विरुद्ध होनेवाले प्रसिद्ध ५७ के गदरके महज़ एक वर्ष पहले हुआ था।

उस समय हमारे समाजमें और खासकर अवध प्रान्तके 'ऊंचों' में परदेकी कैसी कड़ी प्रथा थी उसकी बहुत कुछ झलक आज भी ज्यों-की-त्यों है। अस्तु।

श्रीगढ़के—उस बेचारे ब्राह्मण पुरोहितको छोड़, जो संयोगसे रघुनाथ सिंहकी पुत्री राधाकी बे-पर्दगीके उतना विपक्ष नहीं था—अन्य सभी ऊंच-नीच इस संबन्धके विरुद्ध थे। रक्षपालके पिता दिग्गज सिंहसे प्रायः सबने यही प्रार्थना की, और सलाह दी, कि रघुनाथसिंह-की बेपर्द लड़कीको—कमसे कम श्रीगढ़वालोंके ऊंचे खान्दानके नामपर—कदापि न ग्रहण किया जाय।

कितनोंने तो यह भी धमकाया कि यदि यह संबन्ध हुआ तो बिरादरीवाले अनन्तपुरकी राधासे व्यवहार रखनेवालों-का बहिष्कार कर देंगे।

बहिष्कार हुआ भी और प्रायः त्योंही हुआ ज्योंही राधाको लेकर रक्षपाल सिंह अपने घर आये। ब्राह्मण पुरोहितने श्रीगढ़वालोंको हज़ार समझाया कि इस देशमें हमेशा परदा नहीं था। रामके ज़मानेमें जब सीता वनको गयी थीं—और यह कहती हुई गयी थीं कि—'मोहि प्रभु संग को चितवन हारा, सिंह वधुहिं जिमि शशक सियारा" उस समय देशमें परदा कहां था? सत्य-व्रती हरिश्चन्द्रके समयमें जब शैव्या—पतिसे अलग—दूसरे महाजनके यहां बिकी उस समय परदा कहां था? नलके साथ-साथ दमयन्ती जब वन-वन विचरती फिरती थी—जैसे शरीरके साथ-साथ छाया—तब परदा कहां था? यदि स्त्री सती, पतिप्राणा और तेजस्विनी हो और पति पवित्र और वीर हो, तो, परदा पाप ही है—पुण्य नहीं। केवल परदेक बाहर होनेहीसे कोई स्त्री अप-वित्र नहीं हो सकती। हमारे पुराणोंकी विख्यात

पञ्च कन्यायें—अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी एक भी परदेवाली नहीं थीं। परदेमें न तो सती रहती थीं, न सावित्री ; न गार्गी और न अनुसूया। फिर यदि ठाकुर रघुनाथ सिंहकी दुहिता राधा परदेके बाहर रहती हैं तो क्या बुरा करती हैं। महज़ इस जरासे, नगण्य लोकाचारके लिये—जिसका सम्बन्ध आत्मासे अधिक शरीरहीसे है—ठाकुर दिग्गज सिंह और रक्षपाल सिंहका सामाजिक वहिष्कार करना अज्ञान है, मूर्खता है, अन्याय है, पाप है।

मगर, अज्ञानी समाजवालोंकी समझमें पुरोहितकी उचित बातें न आयीं। ठाकुर दिग्गजसिंह जाति-वहिष्कृत किये ही गये। पर इससे ठाकुर साहब, उनके पुत्र, और उनकी बधूको कोई क्षोभ या कष्ट नहीं हुआ। क्योंकि वह हर प्रकारसे सम्पन्न थे। और सम्पन्न व्यक्ति समाजकी नीच आज्ञाओंको अवश्य ही निर्भयतासे ठुकरा सकता है।

गांववाले प्रति दिन सायं और प्रातःकाल राधा और और राधावारको, सुफेद घोड़ेके जोड़ेपर सवार होकर वीर रजपूती बानेसे हवाखोरीके लिये जाते देखते थे।

कभी-कभी उनकी ओर देखकर, नाक सिकोड़कर, अंगुली भी उठा देते थे। पर इससे न तो राधाके मनपर कोई प्रभाव पड़ता था और न रक्षपालके। क्योंकि, उन दोनोंमें अगाध प्रेम था; और वह प्रेम क्षुद्र सामाजिक भावनाओंसे कहीं ऊंचा और तेजस्वी और आनन्दाकर था।

४

श्रीगढ़की उस गरीब बुढ़ियाकी उम्र सत्तर बरसके ऊपर थी और उसके नौजवान पौत्रकी सत्रहके।

"अभी कितनी दूर गोरोंकी पल्टन है बच्चा?" वृद्धाने आंखें मिलमिलाकर अपने उजड़े घरके एकमात्र प्रकाशकी ओर देखा।

"माता!" पोतेने वृद्धाके दुःखमें सूखकर उज्ज्वल हुए केशोंको सहलाते हुए कहा—"गांववालोंका अनुमान है कि परसों शामतक वह अपनी बन्दूकें लिये श्रीगढ़की छातीपर आ धमकेंगे।"

"गांववाले कौन बेटा? तू तो कल ही कह रहा था कि श्रीगढ़के सभी पुरुष और बच्चे, औरतों और कम-

ग़ोरोंको छोड़कर, इधर-उधर—जिसकी जिधर सींग समाई —भाग गये ।"

"सभी अभी नहीं भागे मां; मगर, आधेसे ऊपर घर केवल बूढ़ियों और औरतोंसे भरे पड़े हैं। बाकी लोग भी आज सायंकाल तक भाग जायँगे।"

"तब तूही क्यों मेरे आसरे बैठा है? बेटा! तू भी भाग। मैं तो मरनेहीवाली हूं। दो दिन बाद नहीं, तो पहले ही सही। सुना है, गोरे गांवमें आग लगा देते हैं, औरतोंको बेआबरू करते हैं और पुरुषोंको पेड़ोंपर लटका कर फांसी दे देते हैं! आह! नाश हो ऐसे गोरोंका! तू भी भाग मेरे लाल! तू जीता रहेगा तो मेरी आत्मा स्वर्गमें भी आनन्दित रहेगी। और तुझे खोते ही मेरा स्वर्ग भी नरक हो उठेगा।"

"पर, मावा!" बूढ़ीके कपोलोंको हाथोंमें लेकर पौत्रने कहा—"मैं तुम्हें छोड़कर न जाऊंगा। फिर चाहे मरूं या जीता रहूं। भला मैं जीकर ही क्या करूंगा जब वे पापी विदेशी तुम्हारी दुर्दशा कर तुम्हें मार डालेंगे। ना—मावा! तुम भी चलो भागकर, तब मैं

चलूंगा ; और नहीं तो, जहां तुम मरोगी वहीं मैं भी— तुम्हें बचाते-बचाते, संभालते-संभालते—अपने प्राणोंको होम दूंगा।"

"कौन प्राणोंको होमनेवाला है इस झोपड़ीमें?" पञ्चम-मधुर स्वरमें किसीने झोंपड़ीके द्वारसे ललकारकर पूछा। बूढ़ी उस ध्वनिको सुनकर, दहलकर, स्तब्ध हो रही। उसके आंसू निकलते-निकलते थम गये। उसका जवान पौत्र, लपककर, द्वारपर गया और क्षणभर बाद, एक वीर वेशिनी स्त्रीके साथ, अपनी दादीके पास आकर साश्चर्य खड़ा हो गया।

"यह कौन है बेटा!" बूढ़ीने पूछा।

"मैं निर्लज्जा और जाति-वहिष्कृता राधा हूं; मां!" वीर वेशिनीने गम्भीर भावसे कहा—"मैं तुम्हें यह बताने आई हूं कि, भागनेसे प्राण न बचेंगे।"

"मगर, आधासे अधिक श्रीगढ़ तो पुरुष-विहीन हो गया।"

"नहीं, यह समाचार भी अब सत्य नहीं। ज्योंही मेरे पतिको यहांवालोंकी कायरताकी खबर मिली त्योंही

कई अन्य मित्रोंकी सहायतासे, उन्होंने आधे रास्तेसे, गांवके एक-एक प्राणीको पुनः लौटा लिया। वे लोग भागनेवालोंके सामने तलवार लेकर अड़ गये थे, कि भागोगे तो गोरोंके आनेसे पहले ही मार डाले जाओगे। बस, सीधेसे, लौटही चलो अपने अपने घर की ओर। कायर कहींके !"

"तब, अब क्या होगा बेटी ? क्या न भागनेसे हमारे प्राण बच रहेंगे ?"

"प्राणोंके लिये भागना ही नीचता है मां !" राधाने गर्जकर कहा—"हम सरकारके शत्रु नहीं हैं और न तो श्रीगढ़के एक भी बच्चेने अंग्रेजोंके विरुद्ध तलवार ही उठाई थी। फिर क्या कारण है जो गोरे हमपर आक्रमण करें ?"

"मगर वह तो बिना जांचे-बूझे ही गांवोंको जलाते, लूटते, मारते, काटते आतङ्क फैलाते चले आ रहे हैं। वह निश्चय ही हमें भी भूनेंगे—लूटेंगे।" युवकने कहा।

"यदि वे—निरपराध होनेपर भी—हमपर आक्रमण करेंगे, तो, हम उनका सामना करेंगे, लड़ेंगे; और तब मरेंगे। भागें क्यों ?"

"उनके पास बन्दूकें हैं, सेना है। हम भला उनका सामना क्या कर सकेंगे।"

"नहीं, ऐसे डरो मत। हमें ठीक पता चला है, जो दल इधर आ रहा है उसमें दो सौ से अधिक सैनिक नहीं। इधर अकेले इसी गांवमें चार सौ मर्द, डेढ़ सौ बच्चे और साढ़े-तीन सौ स्त्रियां हैं। हम मज़ेमें उनका सामना कर सकते हैं।"

"मगर, हमारे पास तो कुछ डण्डे और चन्द तलवारें ही हैं। क्या इनसे उनकी काली बन्दूकोंका सामना किया जा सकता है ?"

"ज़रूर किया जा सकता है। चार सौ तलवारें तो अकेले मेरे श्वसुर ही ने एकत्र की हैं। उनके अलावा लाठियों और तीर-धनुषका प्रबन्ध भी हमने किया है। उनका बन्दूकोंका सामना हम तीरोंसे करेंगी। गांव भर के लोहार मेरे आंगनमें जुटकर धनुष और तीर तैयार कर रहे हैं। पुरुष तलवारों और बरछोंसे लड़ेंगे और स्त्रियां केवल धनुष संभालकर अपने-अपने दरवाज़ोंपर अड़ी रहेंगी। ऐसी हालतमें गोरे चाहे हमारे प्राण ले लें,

पर इज़्ज़त नहीं ले सकते। और हमारी इज़्ज़त है तो सब कुछ है।"

बूढ़ी भी क्षत्राणी थी। उसने उठकर कांपते हाथसे, राधाको छातीसे लगा लिया—

"धन्य है बेटी! भला, कौन कह सकता है कि तू निर्लज्जा है। सचमुच तू क्षत्राणी है! तू जाति-वहिष्कृता है तो क्या हुआ, तुझे बधूके रूपमें पाकर श्रीगढ़ धन्य हो गया।"

५

श्रीगढ़की वह बस्ती तो आज भी है, मगर अब न तो वह निर्लज्जा राधा है, न उसका वीर पति रक्षपाल सिंह और न उनके जाति वहिष्कृत परिवारका कोई प्राणी ही।

पर आज भी उस गांवके कुछ बूढ़े भांट, निर्लज्जा राधाकी कहानी, ढोल, खंजड़ी और करताल बजा-बजाकर, अपनी ग्रामीण भाषामें, गाया करते हैं। वे संक्षेपमें उसकी कहानी इस तरह गाते हैं—

"हे श्रीगढ़के उगते बच्चो ! एक ज़माना बीत गया, जब तुम्हारे इसी गांवकी एक क्षत्राणी वधूने सारे प्रांतके पुरुषोंको स्तब्ध कर दिया था।

'उसका नाम था श्रीराधा। वह अनन्तपुरके ठाकुरोंकी दुलारी बेटी थी। और, श्रीगढ़के ठाकुरोंकी प्राण-प्यारी वधू।

'उस समय जब कि घर-घरकी कन्याएं और बधुएं परदेमें सांस लिया करती थीं—वह बे-पर्द रहा करती थी। वह एक साथ ही स्त्री भी थी—और पुरुष भी। जैसे झांसीवाली महारानी।

'इसी गांवके मूर्खों ने, बेपर्द होनेके कारण, राधाके पति और परिवारको जातिसे बाहर निकाल दिया था। पर, गांववालोंकी इस दुष्टतासे राधा उनपर ज़रा भी रुष्ट न हुई।

'तुमने देखा है कि नहीं ? वह श्रीराधा आज भी तुम्हारे गांवके बाहर, सतीकी उस समाधिके भीतर सो रही है। और वहीं उसका प्राण-धन रक्षपाल सिंह भी है।

'तुम जानते हो, वह क्यों सती हुई ? तुम्हारे ही लिये तो। यदि राधा और उसके पति रक्षपालने घोर युद्ध कर गोरोंकी सेनासे इस श्रीगढ़की मर्यादा न बचायी होती, तो ; विश्वास मानो, आज तुम्हारे मुंहकी लाली, काली दिखाई पड़ती।

'गोरोंकी सेना, काली-काली बन्दूकें लेकर, इस गांवको जलाने और इसकी मर्यादा लूटने आयी थी। भला उनसे कौन लड़ता ? वे कालकी तरह बली, छली और निर्दय थे।

'मगर, राधा और उसके पतिने, भागते हुए ग्रामीणों-को बटोर कर, तलवारें इकट्ठी कर, ढालें सम्भाल कर, बरछे तान कर, तीर-तरकश और धनुषका प्रयोग कर, उनसे लोहा लिया।

'राधाके ललकारने पर इसी गाँवकी तुम्हारी माताएं और बहनें वैसी ही विकराला हो उठी थीं, जैसी शुम्भ-निशुम्भके नाशके समय स्वर्गकी देबियां।

'बूढ़े लड़े और लड़े और लड़े—पर गोरे उनसे प्रबल थे।

'युवक लड़े और लड़े और लड़े—पर गोरे उनसे भी प्रबल थे। तब गांवमें सन्नाटा छा गया। सबको निश्चय हो गया कि अब विदेशियोंके कुकर्मोंसे श्रीगढ़की मर्यादा अवश्य भ्रष्ट की जायगी।

'पर, हे श्रीगढ़के उगते बच्चो! तुम रोज़ प्रातःकाल उस सतीकी समाधिको श्रद्धया प्रणाम किया करो! क्योंकि, उसमें सोनेवाली निर्लज्जा राधाहीने उस विपत्तिसे श्रीगढ़की रक्षा की थी।

'वह अपनी बारह सहेलियों और गांवकी चुनी हुई सोलह सुहागिनियोंकी सेनाके साथ, अन्तिम लोहा लेनेके लिए, कमरमें तलवार बांधकर, हाथमें धनुष और बाण ले-कर, पीठपर तरकश कसकर, समरांगणमें कूद पड़ी।

'वह सोनेकी तरह चमचम थी, उसके काले चमकीले केश कमर तक लहरा रहे थे, उसकी आंखें कमल-सी थीं और उसकी बाहु फौलाद-सी।

'उसकी मार गोरे न सम्भाल सके। थोड़ी देरतक सामना करनेके बाद वे, बन्दूकें फेंक-फेंक कर, भाग खड़े हुए!

'राधाकी विजय देखकर गांवके बचे-खुचे बूढ़े, बच्चे और युवक एक स्वरसे चिल्ला उठे—श्रीराधाकी जय ! श्रीराधाकी जय !!

'इस तरह वह विपत्ति टली, मदान्ध गोरे भाग गये, श्रीगढ़की मर्यादा सुरक्षित रह गयी। पर —आह ! उस युद्धमें राधाके वीर पति रक्षपालसिंह काम आ गये !

'इसीसे तो, उसने, उक्त संवाद पाते ही अपना वीर बाना उतार फेंका। तुम पूछोगे—क्यों ? मैं कहूंगा—स्वर्ग जानेके लिये। तुम पूछोगे—क्यों—क्यों ? मैं कहूंगा—अपने प्राण प्यारे पतिसे मिलनेके लिये !

'वह निर्लज्जा राधा, हे श्रीगढ़के उगते हुए बच्चो !—उसी दिन, सोलहो शृङ्गार सजा कर, चितापर चढ़कर, अपने पतिका अमर मस्तक गोदमें लेकर, अग्नि-रथपर बैठकर, स्वर्ग चली गयी !

"मगर, उसकी कहानी आज भी जीती है, उसकी समाधि आज भी खड़ी है और उसकी स्मृति आज भी अमर है—हे श्रीगढ़के बच्चो !"

हि

हिन्दू

१

यद्यपि उस समय दिनके दस ही बजे थे; फिर भी, ज्येष्ठ मासकी कृपासे, ऐसा जान पड़ता था मानों आकाशसे अग्निकी वृष्टि हो रही है। ग्रीष्मके भयसे रूख रूखे खड़े थे, तालाबोंका गला सूख रहा था और माता बसुन्धराकी छाती फट रही थी। भगवान चण्डकरने मानों संसारमें मार्शल-ला घोषित कर दिया था। उनके अत्याचारी कर जिसे जहां पाते वहीं झुलसा रहे थे। लोग घरोंमें नंगे पड़े थे, फिर भी उनपर ग्रीष्मकी मार

पड़ रही थी। पवनदेव ही मानों सूर्यदेवके जनरल डायर थे। उनकी एक-एक बात लू होती थी जिसके प्रत्येक आक्रमणसे अनेक निरीह—बूढ़े बच्चे और स्त्रियां—घायल होते थे, तड़पते थे, हाय-हाय करते थे और मरते थे! ग्रीष्मके सूर्यके और पवनदेवके अत्याचारोंसे पीड़ित, भगवान्के नाम ले-लेकर 'त्राहि! त्राहि!!' पुकारते थे; पर भगवानके कानों तक अभागे प्राणियोंकी आवाज़ पहुंचने भी नहीं पाती थी। कहा जाता है, ओडा-यर, डायर और चेम्सफोर्डके विरुद्ध भी पीड़ित भारत-वासियोंकी पुकार विदेशी पार्लमेंटकी ओर भेजी गयी थी; पर वहां तक पहुंच न सकी। रास्तेमें ही रोक ली गयी। तब? भगवान् अत्याचारियोंका अनुकरण करते हैं या अत्याचारी भगवान्का?

ऐसे ही समय रायबहादुर गोविन्द प्रसादके बँगलेके सामनेवाले कुएंपर उनके कई नौकर, खसकी टट्टियां तर करनेके लिए पानी खींच रहे थे। पानी खींचते-खींचते नौकरोंने सुना, कोई कह रहा था—

"भैया, बड़ा प्यासा हूं।"
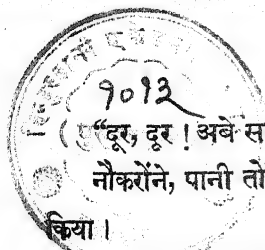
"दूर, दूर ! अबे साले दूर रह ! कुआं छू देगा क्या ?"

नौकरोंने, पानी तो नहीं, गाली देकर प्यासेका सत्कार किया।

"भैया, बड़ा प्यासा हूं। शहरमें कई पौसरे चल रहे हैं; पर किसीने मुझे पानी नहीं पिलाया। चमार हूं न। भैया बूढ़ा हूं। चलते-चलते थक गया हूं। प्याससे गला सूख गया है। अभी एक कोस और चलना है। घर पहुंचते-पहुंचते तो मारे प्यासके मर जाऊँगा। थोड़ा सा पानी—भैया ! थोड़ा सा !"

प्याससे व्यग्र वृद्ध चमारने कुँएकी सीढ़ियोंपर हाथ और मस्तक पटक-पटक कर नौकरोंको प्रणाम करना और जलके लिये गिड़गिड़ाना आरम्भ किया। पर, इसका फल उलटा ही हुआ। एक नौकरने दूसरेसे कहा—

"अरे, इसने कुएँ को छू दिया !"

दूसरेने घबराकर पहलेसे पूछा—"अब ?"

"अब क्या, मालिकको खबर देना चाहिये। इसी कुएँ के जलसे ठाकुरजी स्नान करते हैं, मां जी पूजन करती हैं और सरकार अपनी प्यास बुझाते हैं। चमार सालेने

छूकर तमाम कुँआ अशुद्ध कर दिया। मारो ससुरेको! पकड़ ले चलो!!"

*　　*　　*　　*

राय बहादुर गोविन्द प्रसाद भोजन कर सोनेकी तैयारी कर रहे थे। जिस कमरेमें वे थे उसमें एक षोड़शी कन्या और एक युवक भी—कुर्सियोंपर—मेज़के सामने बैठे थे। कमरा बिलकुल अंगरेजी ढंगसे सजा था। दीवारोंपर जितनी तस्वीरें थीं उनमेंसे दो-एकको छोड़ बाक़ी सभी अंगरेज़ महापुरुषोंकी थीं। सामनेकी दीवारपर, दरवाज़ेके ऊपर, 'आवर सेलर किंग' की तस्वीर थी। उसके ठीक दाहिनी ओर सिराजुद्दौलाको लूटने वाले क्लाइवका चित्र था और बायीं ओर महाराज नन्दकुमारके प्राणोंके ग्राहक वारेन हेस्टिंगसका। हिन्दू रायबहादुरके घरमें रामपंचायतनका चित्र नहीं था; पर कूटनीतिज्ञ डलहौसी का था। गणेशजीकी मूर्ति नहीं थी पर लार्ड कर्ज़नकी गर्दन [ज़रूर वह मिट्टी की थी] एक 'ब्रेकेट' पर शोभा दे रही थी।

राय बहादुरने युवकसे पूछा—

"अनिरुद्ध, अभी तुम्हारी परीक्षाका फल प्रकट होनेमें कितनी देर है।"

युवक—मैट्रिकुलेशन और इण्टरमीडिएटके फल प्रकट हो चुके हैं, अब हमारी ही बारी है। इस बार बड़ी देर लग रही है। जूनके अन्तिम सप्ताहमें फल प्रगट हो जानेकी आशा की जाती है।

राय०—इस बार भी तुम प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होगे न ? या बी० ए० में आकर पीछे पड़ जाओगे ?

युवक—देखिये ; परिश्रम तो भरसक खूब किया है।

इतने में दरवाज़ा खोल कर घबराया हुआ नौकर भीतर आया।

"क्या है रे ?"

"हुजूर एक चमारने कुआं छू दिया है।"

"चमारने कुआं छू दिया !!" ज़रा क्रोधसे गोविन्द-प्रसादने कहा—"और तुम लोग देखते रहे ?"

"सरकार ! हमलोग उसे मना कर रहे थे—चिल्ला रहे थे—पर उसने छूही दिया।"

"कहां है साला चमार ?" कहते कहते रायबहादुर

कमरेके बाहर आये। फाटकके पास दृष्टि पड़ते ही उन्होंने देखा, किसी वृद्ध ग़रीबको उनके नौकर बड़ी निर्दयतासे पीट रहे थे। बूढ़ेकी अवस्था, नौकरोंकी निर्दयता और ज्येष्ठकी भीषणता देख कर गोविन्दप्रसादके हृदयमें कुछ दयाका संचार हो रहा था कि 'चमार'-का ध्यान आया! चमारकी यह हिम्मत!! वह प्यासा था तो मर जाता; पर कुएँको छू क्यों दिया?

"मारो, मारो!! सालेको दिन भर धूपमें खड़ा रक्खो! इसी समय कुएंका पानी निकलवाके फेंकवा दो और जो कुछ ख़र्च लगे इस चमारके बापसे—मरे बापसे—वसूल करो!"

वृद्ध चमार बलि-पशुकी तरह, क़साईके हाथमें पड़ी गऊकी तरह, या मार्शललाके जमानेमें अमृतसरकी किसी गलीमें टिकठियोंपर बांध कर पीटे जानेवाले सुकुमार बच्चों-की तरह चिल्ला रहा था और हिन्दू रायबहादुर अपने कमरे-में बैठे उसकी धृष्टताको सोच-सोच कर आंखोंसे आगकी चिनगारियां निकाल रहे थे। उसी समय लाठी टेकता हुआ एक वृद्ध मुसलमान भीतर दाख़िल हुआ। उसे देखते

ही युवती और युवक खड़े हो गये। दोनोंने झुककर कर 'मौलवी साहब' को सलाम किया। उस वृद्धने युवतीको उर्दू भाषाकी शिक्षा दी थी। उसने रायबहादुर से कहा—

"अब उसे बख्श दें हुजूर! बेचारा बहुत बूढ़ा और कमज़ोर है।"

"बूढ़ा और कमजोर है?" तमक कर रायबहादुरने कहा—"मौलवी साहब! जिसे आप बूढ़ा और कमज़ोर कहते हैं उसने ऐसी गुस्ताखी की है कि उसकी जान भी लेली जाय तो कम सज़ा होगी। बदमाशने तमाम कुआं नापाक कर दिया।"

मौ०—खैर हुजूर! वह अपनी सज़ा काफीसे ज्यादा पा चुका। इस शिद्दतकी गर्मी, आफतकी धूपमें बेचारा इतना पीटा गया कि; आह! रहम कीजिये उसके बुढ़ापे-पर, मिहर्बानी करिये उसकी कमज़ोरीपर तरस खाइये उसकी प्यासकी उस हालतपर। शहरमें उसे कहीं पानी न मिला! उफ़! आप लोगोंकी जात भी ग़ज़ब है।

ज़रा अकड़के साथ रायबहादुरने कहा—

"ग़जब नहीं तो क्या; हमलोग बड़ी सफाईसे रहने-

वाले हैं। हिन्दू हैं। आप लोगोंकी तरह भ्रष्टता हमारे मज़हबमें नहीं है।"

मौ०—हां जनाब। मगर, हमारा मज़हब इन बातोंमें बहुत ही अच्छा है। अभी कलकी बात है। आपहीके पड़ोसी ख़ानबहादुर अब्दुलग़नी साहबके यहां मैं बैठा था, हम दोनों खाने जा रहे थे। दस्तरख़ान पड़ गया था। तश्तरियां बिछ रही थीं। इतने हीमें एक गंदा, ग़रीब और बूढ़ा मुसलमान, कुछ खाना मिलनेकी उम्मेदसे, दरवाज़ेपर पुकाराने लगा। आपको सुन कर तअज्जुब होगा, उसे हम लोगोंने अपने साथ खिलाया। कोई ग़रीब है तो क्या हुआ सब उसी अल्लाहतालाके बंदे—ग़ुलाम हैं। फिर आपसमें यह नफ़रत कैसी? यह कुदूरत कैसी?

* * * *

बड़ी आरज़ू-मिन्नतके बाद बेचारे मौलवीने चमारकी जान बचायी। उसे पानी दिलवाया और एक डोलीपर बैठा कर, अपने ख़र्चेसे, उसके ग्राम भेज दिया।

३

रामगञ्जके कलेक्टर मिस्टर जान्सनने, पुलीस सुपरेण्टेण्डेण्ट मिस्टर किडसे कहा—

"नानकोआपरेशनके ज़मानेका रामगञ्जपर बहुत बुरा असर पड़ा। यहांके लोगोंमें ख़तरनाक युनिटी है।"

"जी हां; यहांसे खिलाफ़त और तिलकस्वराज्यफ़ण्डमें चंदा भी ख़ूब उतारा गया है। पिकेटिंग भी खूब ही हुई है और लोग जेलखाने भी ख़ूब गये हैं।"

"इसीसे तो ऊपरके आफिसर हमारे ऊपर सख़्त नाराज़ हैं। कोई तर्कीब नहीं सूझती है।"

"किस बात की?"

"हिन्दू-मुसलमानोंमें फूट डालने की?"

"फूट डालनेके लिये तर्कीब करनी होगी?"

"ज़रूर! जबतक अंगरेज़ोंको यहां राज करना है तबतक इन दोनों फिरकोंको आपसमें लड़ाते रहना होगा। 'डिवाइड एण्ड रूल' ही हमारा सिद्धांत है। हमें इस बातके लिए प्रयत्न करना होगा, जिससे ये दोनों कौम—"यु-

नाइटेड वी स्टैण्ड, डिवाइडेड वी फ़ाल !" का अर्थ न समझ सकें।

"तो ?"

"तो क्या ? कोशिश कीजिये। इन्हें आपसमें लड़ाइये। नहीं तो अपनी नौकरीसे हाथ धोनेके लिए तैयार हो बैठिये।"

क्षण भरतक दोनों चुप रहे इसके बाद कलेक्टरने पूछा—

"कोई तर्कीब है ?"

"है क्यों नहीं।"

"क्या ?"

"कोई भी हिन्दुस्तानी पुलिस, अपनी नौकरीके लिए, सब कुछ कर सकता है। हिन्दू-सलमानोंको लड़ानेके लिए पुलीसकी मदद लेनी पड़ेगी।"

"यानी ?"

"यानी दो-चार दिन सब्र कीजिये। देखूं, मैं क्या कर सकता हूं।"

४

ऊषा (रायबहादुरकी पुत्री) अपने उद्यानमें खड़ी भगवान् भुवनभास्करका पतन देख रही थी। अत्याचारियोंका पतन अपने घरसे ही आरम्भ होता है। 'सीज़र'-के सर्वनाशका कारण उसका भतीजा 'ब्रूटस' था, सिराजुद्दौलाको पतनकी कब्रमें डालनेवाला उसका सगा मीरजाफ़र था, महाप्रतापी रावणका सच्चा हत्यारा विभीषण था। इसी प्रकार सूर्यका पतन चाहनेवाला उसका प्रिय आकाश था! दिवाकरके अत्याचारोंको देख-देखकर आकाश कांप गया। गगनमंडलमें क्रांतिके चिन्ह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। पहले एक छोटेसे तारेने सूर्यके सम्मुख सिर उठाकर कहा—"बस! तुम खूब तप चुके। अब हटो!" एक तारेकी यह हिम्मत! प्रभाकर ज़ोरसे चमके! शायद उन्हें यह नहीं मालूम था कि, क्रांतिका आरम्भक एक ही होता है पर वही एक देखते-देखते ग्यारह, एक सौ ग्यारह, एक हजार एक सौ ग्यारह और अनेक लक्ष ग्यारह हो जाता है। आकाशकी

क्रांतिमें भी यही हुआ। चारो ओरसे अनेक तारोंने अपने छोटे-छोटे प्रकाशसे प्रभाकरका नाश करना आरम्भ कर दिया। क्रांति होनेमें दस-बीस वर्ष थोड़े ही लगते हैं। क्षण भरमें—क्षणोंको युग-सा बनानेवाला अत्याचारी शासक—सूर्य श्रीहत, नतमस्तक, सुन्दरी पश्चिमाके चरणोंपर गिर पड़ा! और? और आकाशके सिंहासन-पर अमृतकर, शांतिप्रद चन्द्रका अधिकार हो गया। सूर्यके चापलूस—कमल—मुर्झा गये और सूर्यसे पीड़ित कुमुद खिल गये! माता वसुन्धराकी छाती ठंढी हो गयी—तापग्रस्त संसारने स्वतन्त्रताकी ठंढी सांस ली!

"मगर, अभी अनिरुद्ध नहीं आये!" ऊषा सोचने लगी—"आज वे इतनी देर क्यों लगा रहे हैं? उन्हें—उन्हें मैं कितना प्यार करती हूं। जबतक वह मेरे पास रहते हैं तबतक संसारकी अन्य सब बातें दूर रहती हैं। पर, उनके हटते ही धीरे-धीरे चिन्ताओंके दर्शन होने लगते हैं।"

किसीके पैरोंकी आहट मिली। ऊषाको रोमञ्च हो आया। अवश्य यह आवाज़ उसके प्रियतमके चरणोंकी

है। परन्तु नहीं। यह तो एक नौकर है। ऊषा उदास हो गयी। नौकरने कहा—

"बहिनजी, भीतर चलिये। मां बुला रही हैं।"

"अच्छा आती हूं।"

नौकर चला गया। ऊषा पुनः अनिरुद्धकी प्रतीक्षा करने लगी। प्रतीक्षा—प्रेमकी प्रतीक्षा! इतनी मधुर, ऐसी मनोहारिणी होती है जिसका वर्णन करना असम्भव है। नाक दबाकर प्राणायाम करनेवाले अनेक नीरस-परमेश्वरोपासक, मरकर भी, उस सुखका अनुभव नहीं कर सकते जो एक युवक-हृदय अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामें प्रतिक्षण पाता है। प्रतीक्षा प्रेमकी जान है। प्रेमका सुख विरहमें है, न कि मिलनमें।

अनिरुद्ध आये। ऊषाका मुख ऊषाकी तरह लाल हो गया, कमलकी तरह खिल उठा, प्रभातकी तरह प्रकाशपूर्ण हो गया!

"इतनी देर?"

अनिरुद्ध चुप रहे।

"बोलते क्यों नहीं ? अबतक कहां थे ? मैं कबसे तुम्हारी राह देख रही हूं ।"

अनिरुद्ध फिर भी चुप रहे। इस बार ऊषाने उनकी आखोंमें कुछ देखकर कहा—

"ओहो ! बड़े प्रसन्न हो। क्या हुआ है ? किसी गोरी बीबीसे शादी ठीक हुई है क्या ?"

"हां ।"

"उसका नाम ? ज़रा मैं भी सुनूं ?"

"हां, हां, तुम्हें ज़रूर सुनाऊँगा यद्यपि काले लोगों-को गोरोंका नाम सुनाना उनकी (कालोंकी) इज्ज़त बढ़ाना है ; फिर भी—"

"फिर भी, मेरे ऊपर मिहरबानी कर...। आप बड़े दयालु जो हैं ।"

"सुनो भी। उस गोरी बीबीका नाम है...ऊ···ऊ" से अधिक अनिरुद्ध न कह सके। ऊषाने उनका मुंह बन्द कर दिया। क्षणभर दोनों चुप रहे। इसके बाद ऊषाके हाथमें कुछ देते हुए अनिरुद्धने कहा—

"इसे पढ़ सकती हो ?"

"क्या ? तार ?" एक नज़रमें पढ़कर उसने कहा—"अरे, तुम पास हो गये ? प्रथम श्रेणीमें ! तभी—तभी इतने प्रसन्न थे !"

अनिरुद्धने कहा—पास होनेसे जितनी प्रसन्नता मुझे नहीं हुई उतनी प्रसन्नता इस बातसे हुई कि, अब तुम्हें 'मेरी' बनकर मेरे घर चलना पड़ेगा। फ़ेल हो जानेपर बाबूजी मेरी शादी न करते ?"

५

रायबहादुर अपने बैठकमें बैठे 'स्टेट्समैन' पढ़ रहे थे, इतनेमें उनके नौकरने आकर कहा—

"हुजूर बड़ा ग़ज़ब हो गया।"

राय०—क्या हुआ ?

नौकर—शहरमें बलवा होना चाहता है। हुजूर मुझे छुट्टी दीजिये। घर जाकर अपने बच्चोंको ठिकानेसे पहुंचा आऊं।

रायबहादुर—आख़िर हुआ क्या है? क्यों बलवा होना चाहता है?

नौकर—सरकार; बड़ेमुहल्लेके राममन्दिरमें किसी मुसलमानने एक बछड़ा मारकर फेंक दिया है। इसीसे हिन्दुओंमें खलबली मच गयी है।

इसी समय बूढ़े मौलाना साहब भी घबराये हुए आये। उन्होंने आते ही कहा—

"जनाब शहरकी बुरी हालत है। बड़ी मसजिदमें किसीने..."

मौलवी साहब आगे न कह कर दांत किटकिटाने लगे।

"बड़ी मसजिदमें क्या हुआ मौलवी साहब?"

"अजी जनाब, उस नापाक जानवरका नाम कैसे लूं। किसीने उसे मारकर मसजिदमें फेंक दिया है।"

"सचमुच!"

"नहीं तो क्या मैं मज़ाक करता हूं? ऐसा मज़हबी मज़ाक़ हम लोग नहीं करते। सुना है राममन्दिरमें भी किसी बदमाशने बछड़ा मारकर फेंक दिया है। इस वक्त

दोनों कौमके लोग गुस्सेसे भरे हैं। आपसमें लड़ाई हो जानेका डर है।"

राय साहबने घबराकर कहा—

"तब मौलाना साहब—मौलाना साहब! इस शहरमें आप ही लोग ज़्यादा हैं। आप......।"

मौलानाने आश्वासन देते हुए कहा—

"आप घबराएँ नहीं। कोई डरकी बात नहीं है। मगर, मैं आपको होशियार करने आया हूं। आप रुपये-वाले आदमी हैं। मुमकिन है कि बदमाशोंका गरोह सर-उठानेपर, आपको तंग करे। खुदा न करे! फिर भी, ऐसा वाकया सामने आये तो आप मुझे ज़रूर याद कीजि-येगा। जबतक मैं ज़िन्दा हूं आपका कोई बाल भी बांका न कर पायेगा।"

६

आखिरकार रामगंजमें दङ्गा हो गया! उस गांवमें मुसलमानोंकी संख्या अधिक थी। उत्तेजित मुसलमानोंके दलके-दल हिन्दुओं पर टूट पड़े। मुसलमान नेताओंने हज़ार समझाया, उनसे प्रार्थनाएं कीं, कहा—"यह काम

हिन्दुओंका हर्गिज़ नहीं है। इसमें किसी तीसरेका हाथ है।" पर बदमाश क्यों सुनने लगे। उन्होंने हिन्दुओंको काटना, पीटना आरम्भ कर ही दिया!

हिन्दुओंको भरपेट लूट कर और जीभर मार कर उत्तेजित मुसलमानोंके एक दलने रायबहादुर गोविन्द-प्रसादका बंगला घेर लिया। उस दलमें एक भी शिक्षित मुसलमान न था। सब शहरके आवारे और गुण्डे थे। फाटक बन्द था, उसे तोड़ता और नौकरोंकी मरम्मत करता गुण्डोंका दल बंगलेके भीतर दाखिल हुआ। जितने दरवाज़े बन्द मिले सबको तोड़ते-फोड़ते वे उस कमरेमें पहुंचे जिसमें दो मर्द (अनिरुद्ध और रायबहादुर) और घरकी तमाम औरतें थीं। अपने सामने मुसलमानोंको जो डण्डों, बर्छों और तलवार, गड़ासोंसे सुसज्जित थे—देखते ही रायबहादुरके देवता कूच कर गये। उन्होंने झपट कर एक गुण्डेके जो उस दलका नेता जान पड़ता था, पैर पकड़ लिये और लगे गिड़गिड़ा कर प्राणभिक्षा मांगने। एक ओर घरकी स्त्रियां चिल्ला रही थीं और दूसरी ओर रायबहादुर!

गुण्डोंके नेताने कहा—"सब औरतोंको यहांसे हटा लो, केवल तुम, तुम्हारा यह साथी (अनिरुद्ध) और तुम्हारी यह खूबसूरत लड़की यहां रहे।"

क्रोधसे अनिरुद्धने कहा—"लड़की यहां क्यों रहे।" वह भी दूसरी औरतोंके साथ भीतर जायगी।"

"अबे चुप रह! जैसे कहता हूं वैसे कर नहीं तो सबको घरमें बन्द कर आग लगा दूंगा।" डाट कर मुसलमान गुण्डेने कहा।

अनि०—आखिर इसे तुम यहां क्यों रखना चाहते हो?

गुण्डा—क्योंकि यह बड़ी ही खूबसूरत है, क्योंकि हम लोग इसे अपने साथ ले जायंगे, क्योंकि इसीको देकर तुम अपने जानोमालको बचा सकोगे।

गुण्डेकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि अनिरुद्धने झपट कर उसकी गर्दन धर दबायी। फिर क्या था? उस अकेले हिन्दूपर बीसों गुण्डे टूट पड़े और इतना मारा कि बेचारा बेदम होकर जहांका तहां ढेर हो गया। औरतें और जोरसे चिल्लायीं उनके साथ ही वह

घर भी जोरसे चिल्लाया मगर कोई सुननेवाला था ? राय-बहादुरने अपनी आंखोंसे अपने, भावी दामादको मार खाते और बुरी तरह मार खाते देखा पर उनकी रगोंमें खून नहीं दौड़ा ! उनकी कादरताको क्रोध नहीं आया ?

मुसलमान गुण्डोंने फिर कहा—"सबको हटा दो और लड़कीको हमारे पास छोड़ कर तुम भी चले जाओ !"

७

मौलवी करीमबख्शका घर रायसाहबके बँगलेके ठीक पीछेकी ओर था। उन्होंने मुसलमान गुण्डोंको रायबहादुरके घरमें घुसते अपनी आंखोंसे देखा। ऊषा पर मौलवी साहबका बड़ा स्नेह था। बूढ़ेके कोई सन्तान न थी। वह उसे अपनी पुत्रीकी तरह प्यार करता था। गुण्डोंको देखते ही उनका माथा ठनका, ऊषाके लिए उनका हृदय व्यग्र होने लगा। पर, इतने राक्षसोंके मुका-बलेके लिए एक कमजोर बुड्ढा !! जो हो, प्राण रहें या जायं पर ऊषाकी रक्षा करनी ही होगी। अपनी छोटी-सी

कुबड़ी टेकते-टेकते जल्दीसे मौलवी साहब घरके बाहर आये।

पर, यह क्या मौलवीके दरवाजेपर तीस-चालीस चमार डण्डे लिये खड़े थे। बेचारा मौलवी व्यग्र हो गया। उसे निश्चय हो गया कि अब ये हिन्दू उसे ऊषाके उद्धारके लिए जिन्दा न छोड़ेंगे। इतनेमें चमारोंके दलमेंसे एक आदमीने आगे बढ़कर मौलवी साहबको सलाम करते हुए कहा—

"मौलवी साहब, आपने एक दिन मेरे ऊपर बड़ा एहसान किया था। हम चमार हैं तो क्या, हिन्दू हैं। हिन्दू जाति अपने उपकारीको नहीं भूलती। आज मुझे ऐसा भय हुआ कि हिन्दू लोग आपको तंग कर सकते हैं। इसलिए मैं चालीस जवानोंके साथ आपकी सेवामें हाजिर हुआ हूं जबतक हम जीते हैं, कोई आपका एक बाल भी नहीं छू सकता।"

बूढ़े मौलवीकी आँसुओंसे भरी आंखोंने उस दिनके पीड़ित वृद्ध चमारको पहचाना। मारे प्रसन्नताके

मौलवी अपने आपको भूल गये। झपटकर चमारको छातीसे लगाते हुए कहा—

"बड़े वक्तपर आये भाई! तुम्हें अभी एक काम करना होगा।"

"हुक्म हो।"

तुम्हें अपने शत्रुपर दया करनी होगी।

"किसपर मौलवी साहब?"

"रायबहादुर गोविन्दप्रसादपर।"

"रायबहादुर? वह बड़े आदमी हैं, ऊंची जातिके लोग हैं। वे हम चमारोंकी सहायता लेंगे?"

इसी समय रायबहादुरके घरसे आवाज़ आई—

"मुझे मार डालो! मार डालो!! मेरी बेइज्जती न करो!!! मैं तुम्हारी बहन हूं, बेटी हूं।"

८

वह दृश्य! उफ, हिन्दू जातिके पतनका वह दृश्य! कैसे लिखा जाय? किस मुंहसे कहा जाय?

अछूतोंसे नफरत करने वाला, उन्हें कुत्तेसे भी घृणित समझनेवाला और अपनेको स्पृश्यताका ठेकेदार समझनेवाला जीव—रायबहादुर—एक कोनेमें खरगोशकी तरह चिपककर खड़ा था। उसके सामने उसका भावी दामाद मूर्छित पड़ा था। अभागा मर गया था या जिन्दा था यह भी नहीं मालूम पड़ता था। और ? और मुसलमान गुण्डे ऊषाके अपमानकी तैयारी कर रहे थे!! अपने क्षुद्र प्राणोंके लिए, अपने घृणित धनके लिए, हिन्दू रायबहादुरने अपनी युवती कन्याको नष्ट होनेके लिए मुसलमान गुण्डोंके हाथोंमें सौंप दिया था।

अभागिनी ऊषा चिल्ला रही थी। अपनी रक्षाके लिए। पर उसे यह नहीं मालूम था कि अबके हिन्दू राणा प्रतापके युगके हिन्दू नहीं हैं, शिवाजीके समयके हिन्दू नहीं हैं। बीस-बीस पुरुषोंसे एक अबला कहांतक अपनी रक्षा करती ? आखिरकार एक मुसलमानने उसे अपनी गोदमें कस ही लिया! मारे भयके अभागिनी बेहोश हो गयी!

* * * *

उसी समय चमारोंके दलके साथ मौलवी साहब कमरेमें दाखिल हुए। क्रोध-कम्पित स्वरसे उन्होंने, उस मुसलमानकी ओर झपटते हुए जिसने ऊषाको अपने काबूमें कर रखा था, कहा—

"ख़ुदाको डर—बेख़बर! परायी औरत अपनी मां-बहनके बराबर होती है। छोड़ दे सीधे से।"

मौलवीकी बात पूरी हो इसका इंतजार कौन करता? चमारोंका दल मुसलमानोंपर टूट पड़ा। देखते-देखते तमाम गुण्डे रायबहादुरके घरसे काफूर हो गये। ऊषाकी लाज भगवान्ने रखी।

६

दस दिनों बाद तमाम भारतके सामने दो तस्वीरें आयीं। एक 'सच्चे मुसलमान'-की और दूसरी 'सच्चे हिन्दू'-की।

सच्चे मुसलमान थे जनाब मौलवी करीमबख्श साहब और सच्चा हिन्दू था अपने स्पर्शमात्रसे राय-बहादुरके कुएँ को अशुद्ध करने वाला वृद्ध चमार।

मुसलमान
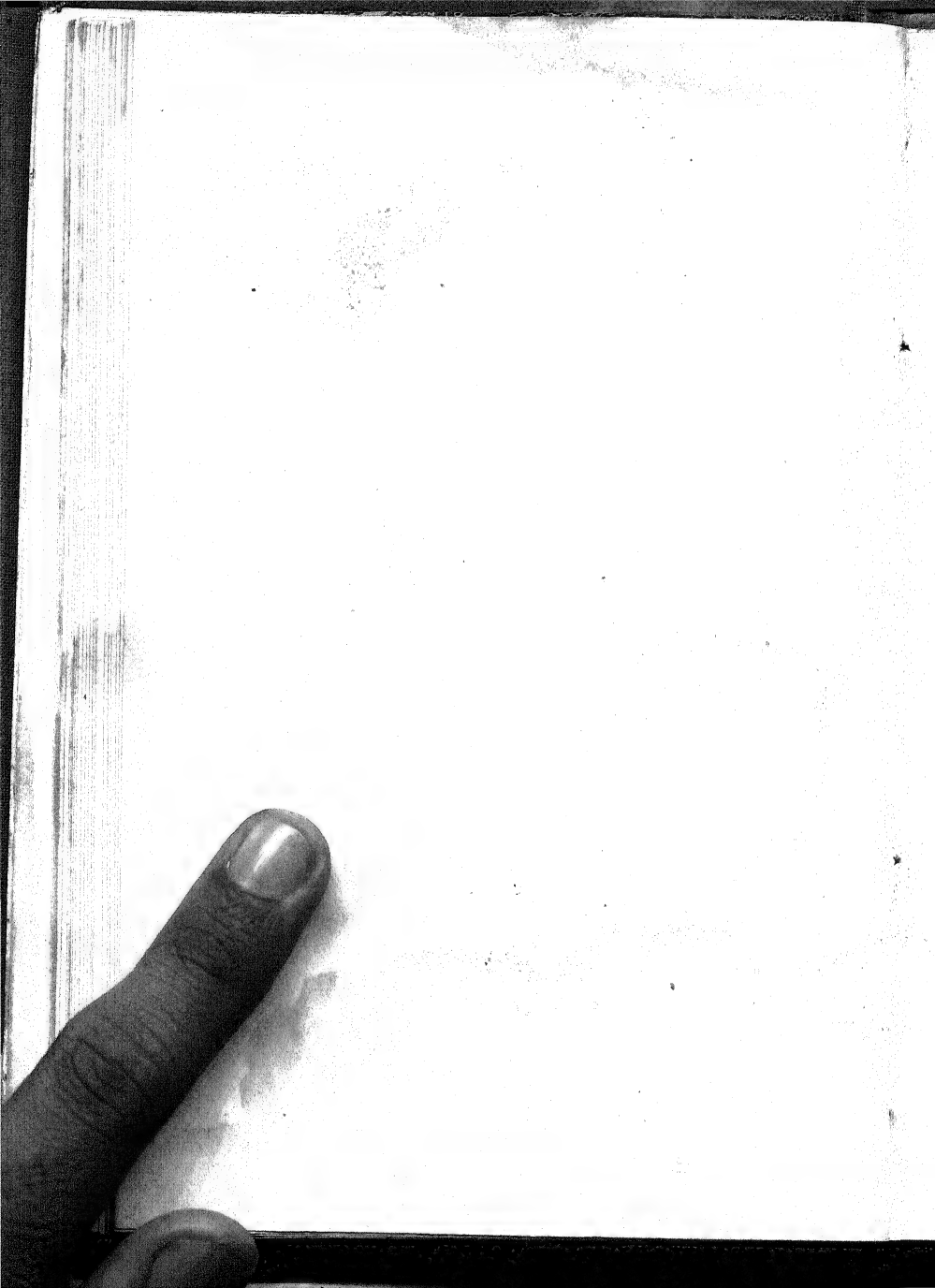
१

"दिया अपनी खुदीको जो हमने उठा
वह जो परदः सा बीचमें था न रहा।
रहा परदेमें अब वही परदःनशीं
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।
न थी हालकी जब हमें अपने खबर
रहे देखते औरोंके ऐबो हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयोंपर जो नजर
तो निगाहमें कोई बुरा न रहा।

*   *   *   *

'ज़फर' आदमी उसको न जानियेगा
वह हो कैसा ही साहिबे फह्मोज़का।
जिसे ऐशमें यादे ख़ुदा न रही,
जिसे तैशमें खौफे ख़ुदा न रहा।

"पर खुदा! आज दिन कितने मुसलमान ऐसे हैं जिन्होंने अपनी खुदी-(आपा) को उठा दिया है? किस अंधेरेकी ओर—परवरदिगार!—किस अंधेरेकी ओर तू इस्लामको लिये जा रहा है? दिनपर-दिन तेरे बच्चे देखते हुए अन्धे और सुनते हुए बहरे बने जा रहे हैं। वे ठोकरें खाते हैं, गिरते हैं और फिर दीवानोंकी तरह तबाहीकी ओर दौड़ रहे हैं। उनमें अपने-परायेके पहचाननेकी तमीज नहीं। बेवकूफ वे—जिस पत्तलमें खाते हैं उसीमें छेद करनेकी तैयारी कर रहे हैं।

"अल्लाह! क्या मजहबके माने खूँरेजी है? धरम भी किसी दूसरेके खूनका प्यासा है? अगर यही सच है तो गुनाह किसे कहते हैं? पापकी तस्वीर कैसी होती है? ये—अपनेको मुसलमान कहनेवाले—तेरे बच्चे, तेरे नाम-पर, मजहबके नामपर आज क्या-क्या नहीं कर रहे हैं

और क्या-क्या करनेको तैयार नहीं हैं ! मगर, खुदा, ऐसे दीवानोंको कभी कामयाबी मिली है ? तवारीखके पन्नेपर-पन्ने उलट डाले पर मजहबके अन्धे दीवानोंको कहीं भी कामयाब होते न देखा । शाहंशाह औरंगजेबसे बढ़कर इस बातका नमूना और कौन होगा ? उसने तेरे और इस्लाम-के नामपर क्या-क्या ज्यादतियां नहीं कीं, पर उसे किसीने कामयाब देखा ? उस वक्त उसके हाथोंमें तूने अपनी मेहर-बानी—ताक़त बख्शी थी । उसने तेरे दिये खजानेको बुरी तरहसे ख़र्च किया । ख़ूनकी नदियां बहाईं, दूसरे मजहब-के सच्चे बन्दोंकी गर्दनें काटी गयीं । फिर भी उसे काम-याबी न मिल सकी । आज उसी औरङ्गजेबके खानदान-वाले भीख मांग रहे हैं, दफ्तरोंमें पंखे खींच रहे हैं, टुक-ड़ोंके मोहताज हो रहे हैं दूसरे मजहबवालोंको—कम-जोरोंको—जबरदस्ती अपने मजहबमें मिलानेका हुक्म तूने कब दिया है ? किसे दिया है ? जिसका ईमान मुसल्लम (पूरा) हो वही तो मुसलमान है ? इस तरह किसी भी मज-हबका सच्चा आदमी मुसलमान है । केवल मसजिदमें जा-कर घुटने टेक देनेसे ही कोई मुसलमान नहीं हो सकता ।

इस्लामको माननेवाले कितने शैतान ऐसे भी हैं जो दिन-रातमें सात बार निमाज पढ़ते हैं, मसजिदमें तेरे नामपर दो-ज़ानू होते हैं फिर भी दुनिया-भरकी मक्कारी, दग़ा-बाजी और बेईमानी करते हैं! क्या वे मुसलमान हैं? अगर वे भी ईमानके पक्के—मुसलमान हैं, तब तो दुनिया-भरके बदमाश, चोर, डाकू, लुच्चे, लफंगे—सभी मुसलमान हैं।

"हम अपने मज़हबको प्यार कर सकते है पर दूसरों-के ईमानकी ओर नफरतकी नजर उठानेका हमें क्या हक़ है? सच्चा मजहब तो गुनहगारोंकी ओर भी हिकारत-(घृणा) से देखनेको मना करता है। गुनहगारोंके लिए तो तेरी मेहरबानी और मुहब्बत है। गुनहगारों—कम-जोरोंके लिए—रहम है। हम ईसाइयोंके गिरजों और हिन्दुओंके मन्दिरोंमें नमाज चाहे न पढ़ें पर उन्हें गिराकर मसजिद नहीं बना सकते। ऐसा करनेसे तू खुश भीं नहीं हो सकता क्योंकि गिरजाघर और शिवालय भी तेरे ही पाक मुकाम हैं। मसजिदका खुदा ही गिरजाघरका ईसा और मन्दिरका शिव है। अगर यह बात न होती तो तेरे

बहुत पास पहुंचे हुए तेरे सच्चे बन्दे—मुसलमान शायद यह कभी न कहते कि—

> काफिर है जो सिजदा करे, बुत-खाना समझकर।
> सर रख दिया हमने, दरे जनाना समझकर।

"जहां ईसाई कहते हैं, 'लव इज़ गाड,' जहां हिन्दू कहते हैं, 'परमेसुरमय प्रेम, प्रेममय नित परमेसुर।' वहीं सच्चे मुसलमान भी उसी आवाजमें कहते हैं—

> हम इश्कके बन्दे हैं, मजहबसे नहीं वाकिफ,
> काबा ही हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या ?

"इतना ही नहीं, तेरे ही किसी इशारेपर एक मुसलमान शायरने कहा है—

> काबावालोंसे जो पूछा, हमने मंजिल यारकी,
> बुतकदेकी ओर चुपकेसे, इशारा कर दिया।

"कौन कह सकता है कि वे पागल थे ? तुझे नहीं पहचानते थे ?

"योरप वालोंको तुर्कोंसे नफरत करने, उन्हें अपने देशके बाहर निकाल देनेकी सलाह किसने दी ? हमारे मजहबके द्वीवानापनने। ईसाइयोंके मनमें यह बात जम

गयी थी कि जोर पकड़ते ही तुर्क ईसाके बन्दोंको अल्लाह-के नामपर सूलीपर चढ़ा देंगे। हिन्दू—सीधे-सादे, भोले-भाले, रहमदिल, खुदाका डर मानने वाले हिन्दू—'मेल-मेल' चिल्लाकर भी मुसलमानोंसे क्यों खौफ खाते हैं! हमारे मजहबके दीवानापनसे। वे एक सांससे तो मेलकी आवाज उठाते हैं और दूसरी सांससे मुहम्मद गोरी, ग़ज-नवी, नादिरशाह और औरङ्गजेबकी याद कर कांप उठते हैं। उनके मनमें यह बात बैठ गयी है कि मुसलमान ऐसे जानवर हैं जो 'नेकी'-का फल-फूल, दूध-दही और पकवान खिलानेपर भी, रहमसे भरे हुए दिलमें जगह देनेपर भी, लीदकी तरह 'बदी' करते हैं और कुत्तोंकी तरह जिस ज़मीनपर रहते हैं उसीकी छातीपर अपने गंदे पञ्जोंसे गड्ढे बना देते हैं! खुदा! गैर मजहबवालोंका यह सोचना एकदम झूठ नहीं है। बहुत कुछ हम ऐसे ही हैं। परवर-दिगार! अगर यही हालत रही तो एक दिन दुनियाके पर्देपरसे हमारी हस्ती मिट जायेगी। हमें इस तबाहीसे बचा। अपने बन्दोंको उजालेकी ओर—मुहब्बतकी ओर

ले चल ! नहीं तो हज़रत 'मीर' के अल्फाज़में मैं भी यही कहूंगा और जरूर कहूंगा कि—

यह नज़रे-बदीमें ही, काबेसे जो उठना हो,
बुतखानेमें जाऊंगा, जुन्नार बँधाऊँगा ।

रहम—अल्लाह ! करम, अल्लाह !"

२

शामकी निमाज़ पढ़ लेनेके बाद मौलवी रहमतुल्ला, मसजिदके एक कोनेमें बैठे हुए उपर्युक्त बातोंको सोच रहे थे। उनकी अवस्था पचास बर्षोंसे अधिक होगी। गर्दन-तक लटकते हुए सिरके केश और छातीतक लटकते हुए दाढ़ीके बाल प्रायः सुफेद होचले हैं। उनका चेहरा देखने-से मालूम होता है कि उन्होंने एक जमाना देखा है। संसारकी गतिको वह बालकोंकी तरह उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखकर बुद्धिमानोंकी तरह सतर्कतासे देखते हैं। विश्वकी परिवर्तनशीलतापर उन्हें दृढ़ विश्वास है। वह इस्लाम धर्मके सच्चे अनुयायी होते हुए भी लकीरके फकीर या अन्धे नहीं हैं। उनके अन्तस्तलके सिंहासनपर इस्लाम

और विश्वप्रेम दोनोंका अधिकार है। वह संसारके सब धर्मोंकी जननी मनुष्यताको ही मानते हैं। उनके बिचारसे जो धर्म मनुष्यताकी रक्षा न करता हो वह अपनेको 'धर्म' कहलानेका अधिकारी नहीं है। संसारमें उनका 'अपना' कोई नहीं है। कहा जाता है कि वह बाल-ब्रह्मचारी हैं। उनका चरित्र गऊके धारोष्ण दुग्धकी तरह उज्ज्वल एवं निर्मल है। उन्हें अनेक छोटे-बड़े मुसलमान अपना गुरू मानते हैं। मसजिदके एक कोनेमें ही रात काटकर और अपने भक्तोंके दिये हुए एक रोटीके टुकड़ेपर ही जिन्दगी बसरकर उन्हें संसारका सम्पूर्ण संतोष मिल जाता है। रमजान नामक एक अनाथ मुसलमान बच्चेको उन्होंने बीस बर्षोंसे अपने प्रेममय संरक्षणमें रखा है। वह उसे अपने सगे पुत्रसे भी अधिक प्यार करते हैं।

उस दिन चार बजेके लगभग रमजान और उसके कुछ साथी मुसलमानोंने एक बन्द गाड़ीमें किसी हिन्दू युवतीको लाकर मौलवी साहबके हवाले किया था। युवती मुर्छितावस्थामें गाड़ीसे उतारी गयी थी। उसे लानेवालोंका कहना था कि वह मुसलमान होना चाहती है। मौलवी

सहाबने जब उन नवयुवकोंसे यह पूछा कि युवती बेहोश क्यों है, तब उन्होंने उत्तर दिया कि कुछ हिन्दुओंसे छीना-झपटी होनेके कारण उसे चोट लग गयी है ; हिन्दू लोग उसे हमारे मजहबमें नहीं आने देना चाहते थे। नवयुवकोंके उक्त कथनमें मौलवी रहमतुल्लाको सत्यकी मूर्ति नहीं दिखलायी पड़ी। उन्हें यह भली भांति ज्ञात था कि इन दिनों दिल्लीके मुसलमान कमर कसकर हिन्दू-द्रोहके लिए तैयार हैं। आये दिन आर्य-ललनाओंपर उनके आक्रमण हुआ करते हैं। अतः वह युवतीकी जबानी उसकी कथा जाननेके लिए व्यग्र हो गये। पर वह तो संज्ञाशून्य थी। पड़ोसकी दो-तीन मुसलमान स्त्रियोंको बुलवाकर मौलवीने उस स्त्रीकी सुश्रूषाका भार सौंप दिया। उन्होंने उन स्त्रियोंसे इस बातकी हिदायत करदी कि वह ज्योंही होशमें आये त्योंही उन्हें (मौलवी साहबको) बुलाया जाय।

नवयुवकों द्वारा लायी हुई युवतीकी अवस्था उन्नीस-बीस वर्षोंकी जान पड़ती थी। मुर्छित होनेपर भी उसके मुखपर पीड़ा एवं दुःखकी छाप थी। नवयुवकोंने जरूर

उसे कष्ट दिया है। क्यों? क्योंकि वह हिन्दू स्त्री है। यहींसे मौलवी रहमतुल्लाकी उपर्युक्त बिचारधारा फूटी थी। निमाज समाप्त कर अपनी जातिका पतन सोचते-सोचते दीनदार मौलवी कभी लम्बी सांसे लेते, कभी आंसू बहाते और कभी करुणस्वरमें किसी मुसलमान कविकी कोई मार्मिक लकीर गुनगुनाने लगते थे। उसी समय एक स्त्रीने आकर उनकी बिचारधाराकी गति रोक दी। उसने कहा—

"पीर साहब, वह होशमें आ गयी। आप जल्द चलें। वह रो रही है।"

३

हिन्दू स्त्रीने मौलवी रहमतुल्लासे कहा—

"मेरा नाम रामभोली है। मेरी ससुराल कलकत्तेमें है। मेरे पति जातिके मारवाड़ी हैं, कलकत्तेमें उनकी कपड़ोंकी, दूकान है। दिल्लीमें मेरा पीहर (पित्रालय) है। मेरे पति-देव मुझे मेरे पिताके यहां पहुंचाने आ रहे थे। हम दोनों दिल्ली-एक्सप्रेससे यहां आ रहे थे। दिल्ली स्टेशनके पहले जिस स्टेशनपर गाड़ी ठहरी उसका नाम मुझे याद नहीं।

वहां मेरे पति पानी लेनेके लिए गाड़ीसे उतरे। उन्हें न जाने क्यों देर लग गयी और उनके लौटनेसे पहले ही गाड़ी छूट गयी। मैं बहुत घबरायी। इच्छा हुई कि जंजीर खींच लूं। पर मारे भयके वैसा न कर सकी।

"दिल्ली स्टेशनपर आकर मैंने कुलीसे अपना सामान उतरवाकर गाड़ीके प्रत्येक डिब्बेमें अपने पतिकी तलाश की। जब वह न मिले तो पुलीसकी मदद लेनेके विचारसे मैंने प्लेटफार्मपर खड़े एक सिपाहीसे कहा कि मैं लाहौरी फाटक जाना चाहती हूं। उसने पूछा—

"तुम अकेली क्यों हो? कहांसे आरही हो? लाहौरी फाटक क्यों जाना चाहती हो?"

मैंने अपनी कथा सुना कर उससे कहा—

लाहौरी फाटकमें मेरे पिताका घर है। मैं वहीं जाना चाहती हूं।"

मेरी बातें सुनकर सिपाहीने—जो मुसलमान था—एक मुसलमान कुलीको बुलाकर मेरा असबाब स्टेशनके बाहर ले चलनेको कहा। मुझे एक बन्द गाड़ीमें बैठा

कर सिपाही कहीं चला गया और थोड़ी देर बाद एक दूसरे मुसलमानके साथ आकर कहने लगा—

"यह भी लाहौरी फाटक पर रहते हैं। इन्हींके साथ जाओ। कोई डरकी बात नहीं है। तुम मजेमें अपने बापके घर पहुंच जाओगी।"

"वह मुसलमान भी गाड़ीके भीतर ही मेरे सामने बैठा! गाड़ी चली। न जाने क्यों उस मुसलमानको देखकर मुझे डर मालूम पड़ने लगा। उसके चेहरेसे बद-माशी टपक रही थी। पर अपनेको अरक्षित समझकर मैंने चुपचाप चली चलना ही ठीक समझा। मैं नीची नजर किये गाड़ीमें बैठी थी, पर वह बराबर मेरी ओर बुरी नजरसे देखता रहा। उसने एक बार कहा—

'गाड़ीका उस तरफका पहिया कमजोर है तुम भी इधर ही आकर बैठो।' उत्तरमें मैंने सिर हिलाकर अस्वी-कार कर दिया। इसपर वह कहने लगा—

'जान पड़ता है तुम मुझसे डर रही हो। डरनेकी कोई बात नहीं। हम हिन्दू नहीं हैं जो तुम्हें कोई तक-

लीफ दे'गे। मुसलमानोंकी बीबीयां बड़े आरामसे रहती हैं। उफ़! तुम तो शाहजादियोंकी तरह खूबसूरत हो। अगर तुम मुसलमान होतीं—'

"मैं फिर भी चुप रही। हिन्दू औरतें पराये मर्दसे बोलनेमें मारे शर्मके मर जाती हैं। वह आगे बोला—

"आजके पांच वर्ष पहले तुम्हारी ही तरह खूबसूरत मेरी भी एक माशूका थी। मैं उसे जीजानसे प्यार करता था। पर अफसोस, उसका निकाह दूसरेके साथ हो गया। तुम मेरे पास आकर बैठो। पहिया कमजोर हैं।'

"इस बार मैंने कहा—

'मैं यहीं मजेमें हूं। आप चुपचाप चलिये।'

"पर उस समय वह मुसलमान मतवाला हो रहा था। मेरी बातोंपर कान न देकर उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपनी तरफ खींचते हुए कहा—

'इधर आ जाओ, मेरी जान! में जानता हूं तुम मुझे लुटेरा समझकर डर रही हो! डरो मत, इधर आओ!'

"क्रोधसे उसका हाथ झटकते हुए मैंने कहा—

'मुझे छोड़ दो। मैं यहीं ठीक हूं। गाड़ी रुकवा दो। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी।'

"जिस तरफ मैं बैठी थी उस तरफकी गाड़ीकी खिड़कियां बन्द थीं केवल उस मुसलमानकी ओरकी एक खिड़की खुली थी। मैं अपने पासकी खिड़की खोलने लगी। उसी समय वह बदमाश झपटकर मेरी बगलमें बैठ गया और मेरे हाथोंको खिड़कीसे हटा दिया। मैं जोरसे चिल्ला पड़ी—

'गाड़ी रोको!'

"पर गाड़ीकी खड़खड़ाहटमें मेरी चिल्लाहट दब गयी। इधर उसने मेरे मुंहको अपने हाथसे बन्द कर मुझे अपनी गोदमें खींच लिया। मैं बेहोश हो गयी!"

इतनी कथा कहते कहते युवतीकी आंखोंमें आंसुओंकी बाढ़ आ गयी। इधर मौलवी साहबकी आंख अंगारेकी तरह लाल हो गयीं। उन्होंने कहा—

"दोज़खी कुत्ता! हरामज़ादा! वह कौन था, बेटी?"

"सुनिये। होशमें आनेपर मैंने अपनेको एक कोठरीमें चारपाईपर पड़ी पाया। कोठरी बाहरसे बन्द

थी। एक छोटासा दीवारगीर जल रहा था। मैं सोचने लगी कि कहां हूं? क्षणभरमें बीती बातें याद आ गईं। मेरा कलेजा कांप उठा। मुझे निश्चय हो गया कि मैं बदमाशोंके हाथोंमें पड़ गयी। चारपाईसे उठकर मैं दरवाजा खोलनेकी चेष्टा करने लगी। उसी समय बाहरसे दरवाजा खोलकर तीन मुसलमान भीतर आये। उनमें एक तो वही सिपाही था, और दूसरा वह था जो मेरे साथ स्टेशनसे आया था और तीसरा कोई नया आदमी—उनका साथी—था। तीनों शराबके नशेमें चूर थे। उन्होंने आते ही मेरे साथ मजाक करना आरम्भ किया। सिपाहीने कहा—

'सचमुच तुम सोनेकी चिड़िया हो। कलेजेमें छिपा लेने लायक हो।'

'तीसरेने कहा—'परी है परी। खुदाने हमारे लिए बहिश्तसे इस परीको भेजा है।'

"गाड़ीवाले बदमाशने कहा—'तिसपर यह इतना डरती है मानो हम खा जायंगे। अरे अब तुम हमारी

जान हो। दुनियाके इधरसे उधर हो जानेपर भी तुम्हें हम नहीं छोड़ सकते। इधर आओ, मेरी जान !'

"मैं अपनी इज्जत बचानेके लिये उनसे दूर भागने और वे बदहोश मुझे पकड़नेकी कोशिश करने लगे। अकेली मैं—उस छोटे कैदखानेमें कहाँतक दौड़ती? आखिर उन्होंने मुझे अपने काबूमें कर लिया और...।"

बात शर्मकी थी पर उस युवतीकी आँखोंमें शर्मके लिए स्थान नहीं रह गया था। उसकी आँखें क्रोधसे जल रही थीं। वह आगे कहने लगी—

दो दिनों तक उन हत्यारोंने राक्षसोंकी तरह मुझे कष्ट दिया। उनमें एक-न-एक बराबर मेरे पास रहकर मेरी निगरानी करता। मेरे रोने, गिड़गिड़ाने, तड़पने और चिल्लानेका उनपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इसके पहले मैं केवल यह सुना करती थी कि मुसलमान बड़े राक्षस होते हैं पर अब आप बीती देखकर मजेमें समझ लिया है। आप कह सकते हैं कि तू अगर अपनेको बड़ी सती लगाती है तो मर क्यों न गयी। सच मानि

येगा, सती होनेके कारण ही मेरे प्राण अबतक बचे हैं। मेरे पति मुझपर बड़ा प्रेम करते हैं। बहुत खोज करने-पर भी जब उन्हें मेरा पता न मिलेगा तब वे जरूर पागल हो जायंगे—मर जायंगे। हिन्दू स्त्री प्राण देना स्वीकार कर सकती है पर अपने पतिको कष्ट नहीं दे सकती। मैं हिन्दू हूं। एक बार अपने पतिदेवके दर्शन कर लेनेके बाद मरूंगी। उस समय मुझे कोई भी मरनेसे न रोक सकेगा। मगर पीर साहब! आज मुझे यह निश्चय हो गया कि संसारमें कुत्तेकी स्त्री होना अच्छा है पर हिन्दू की नहीं। कुत्ते अपनी स्त्रीकी रक्षामें प्राण ले दे सकते हैं, पर कायर हिन्दू नहीं। आज बारह बजे दिनके लगभग मेरे पास कोई नहीं था। उसके पहले वही गाड़ीवाला बदमाश मेरी निगरानी कर रहा था पर उस समय कहीं चला गया था। दर्वाजा भी खुला ही था। मैं धीरेसे घरके बाहर चली आई। वह मकान यहाँकी किसी गलीमें है। दर्वाज़ेपर आकर मैंने चार-पाँच हिन्दू नवयुवकोंको गली पार करते देखा। मनमें

यह सोचकर कि ये मेरी रक्षा कर सकेंगे मैं उनके पास दौड़ गयी और गिड़गिड़ाकर कहने लगी—

"मुझे बचाइये। मैं हिन्दू स्त्री हूं! आपकी बहन हूं। मुसलमानोंने मुझे पकड़ रखा है।"

"उन सबने मेरी ओर देखा पर उनकी नज़रोंमें हिम्मतकी जगह खौफ था। उनमेंसे एकने कहा—

'हमसे तुझसे क्या मतलब? थानेपर क्यों नहीं जाती?'

"थानेपर कैसे जाऊँ? भाई! वे बराबर मेरे ऊपर कड़ी नजर रखते हैं।"

"दूसरेने कहा—'हम तुझे थानेपर ले तो चलते पर तेरा क्या विश्वास? कौन जानता है तू कैसी औरत है? अदालत कौन दौड़ेगा?'

"तीसरेने कहा—'अजी बदमाश है। जवान औरत होकर मुसलमानोंके यहाँ रहती है। पहले घर छोड़कर भाग आयी होगी अब यारोंसे न पटा होगा इसलिए हमें फँसाना चाहती है। चलो।'

मैंने देखा मेरी रखवाली करनेवाला बदमाश हमारी ओर लपका आ रहा था। उसके हाथमें एक बड़ा डण्डा था। एक हिन्दूके पैर पकड़ कर मैंने कहा—

"तुम मेरे पिता हो—भाई हो। मुझ अभागिनीको बचाओ। वह आ रहा है।"

"इतनेमें वह आही गया। उसने डपट कर हिन्दुओंसे कहा—

'तुम नहीं जानते, यह मेरी बीबी है? इससे क्या बातें कर रहे हो?

उन्होंने उत्तर दिया—'हमसे इससे क्या मतलब? यही हमें तंग कर रही है। कहती है कि इसे तुम जबरदस्ती पकड़कर रखे हो। यह हिन्दू है।'

"बदमाशने नीली-पीली आँखें कर कहा—

'बस सीधेसे चले जाओ। हिन्दू है! हिन्दूके बापकी बीबी है।'

"इसके बाद मैं गिड़गिड़ाती रह गयी पर उन पाँच हिन्दुओंने एक मुसलमानसे मेरी रक्षा न की। अपने दुर्भाग्यको सोच कर मैं मूर्छित हो गयी। कितना अच्छा

होता जो मैं किसी मुसलमान या अंग्रेजकी पुत्री; स्त्री या बहन होती ! यही मेरी कथा है, मौलवी साहब। न तो मैंने किसीसे अपनेको मुसलमान बनानेको कहा है और न होना चाहती ही हूं। फिर भी वे मुझे आपके पास ले आये हैं। पतिदेवके जबतक दर्शन नहीं मिलते तबतक मुझे जीना है। हिन्दू रहकर जीनेसे फिर कोई दूसरी जातिवाले मुझे पकड़ ले जायंगे। अब मुझे हिन्दू धर्म अपने पास फटकने भी न देगा। आप मेरी रक्षा करें। मेरे पतिदेवसे मुझे मिला दें, आपकी इच्छा है तो मैं इस्लाम धर्म कबूल कर लूंगी।"

मौलवी रहमतुल्ला कुछ कहना ही चाहते थे कि रम-जानके साथ, युवतीका सर्वनाश करनेवाले तीनों मुस-लमान आते दिखाई पड़े।

४

रामभोलीके पति विश्वनाथ बहुत सीधे स्वभावके थे। जिस समय वह पानी लेनेके लिए उतरे उनके शरीर पर एक जाकिट मात्र थी। स्टेशनकी जल-कल प्लेट फार्मसे

बहुत दूर मुसाफिर खानेसे सटी हुई थी। वहां पर भीड़ भी बहुत थी अतः उनके पानी लेकर आते न आते गाड़ी छूट गयी और अपने पूर्ण वेगसे दिल्लीकी ओर दौड़ी। लाचार, उन्होंने टिकट बाबूसे कुल हाल कहा। उस दिन दिन टिकट बाबूके हाथ कोई शिकार लगा नहीं था। अत; विश्वनाथको देखकर वह बड़ा खुश हुआ। उसने कहा—

"आपके पास टिकट भी नहीं है। आपकी बातोंका क्या विश्वास ? कायदेसे तो आपसे कलकत्ते तकका दूना चार्ज किया जायगा।"

विश्वनाथने कहा—'पर मेरे पास तो इस समय एक पैसा भी नहीं है।'

टिकेट०—अंगूठी तो है। आपकी बीबी अकेली चली गयी है। खुदा जाने उसपर क्या बीते। आपको दिल्ली तार देना चाहिये। इसलिये आपको अपनी अंगूठी बेच देनी चाहिये।

स्रीके लिये विश्वनाथ व्यग्र हो रहे थे। उन्होंने अपनी पचासकी अंगूठी उसी टिकट बाबू द्वारा तीस रुपयेकी

बेचवा दी। इसके बाद कलकत्तेका दूना चार्ज न देकर उन्होंने टिकट कलक्टरको पांच रुपये घूसमें दिये! यह सब करते कराते आध घण्टेके ऊपर लग गया। उनका तार जिस समय दिल्ली पहुंचा उस समय दिल्ली एक्सप्रेस बिलकुल खाली हो गयी थी। उसमें झाड़ू पड़ रही थी।

दूसरी गाड़ीसे दिल्ली पहुंच कर पहले तो उन्होंने स्टेशनपर, साधारण ढङ्गसे, अपनी स्त्रीकी तलाश की। जब वहाँ पर पता न लगा तब ससुराल आये! उनकी बात सुनकर ससुरालमें हाहाकार मच गया। उनके सास-ससुर सभी रोने लगे। पुलिसमें खबर की गई। 'अर्जुन' और 'तेज' में नोटिस छपवाई गई पर दो दिनों तक रामभोलीका कुछ भी पता न चला। विश्वनाथ व्यग्र हो गये। रामभोलीने जो मौलवी रहमतुल्लासे कहा था वह बात बिलकुल ठीक थी। विश्वनाथका रामभोली पर अपार प्रेम था। वह अपनी प्रियाके विरहमें पागलसे हो गये। खाना-पीना हराम हो गया। नींद गधेकी सींग हो गयी। रह रह कर उनका मन यही कहता कि स्टेशनवालोंसे ही पता लगेगा। तीसरे दिन शामको उन्होंने आर्य समाजके

दफ्तरमें अपनी स्त्रीके गायब हो जानेकी खबर की। मन्त्रीने कहा—

"'अर्जुन' में आपकी सूचना हम लोगोंने आज पढ़ी है। हमारे दो आदमी आपकी स्त्रीकी तलाशमें दोपहरसे ही गये हैं। आप बैठें। अब वे आते ही होंगे। उनके आ जाने पर कोई काररवाई की जायगी।"

साढ़े सात बजे रात आर्यसमाजके दोनों आदमी एक गाड़ीके साथ लौटे। उसी गाड़ीमें रामभोली उस बदमाशके घर गयी थी। उन्होंने मन्त्रीसे कहा—

"दो चार आदमियोंको साथ लेकर हमारे साथ चलिये। सम्भव है, कुछ झगड़ा हो जाय। बदमाशोंका क्या ठिकाना?"

आर्यसमाजके मन्त्री विश्वनाथ तथा तीन और आदमी उसी गाड़ीमें बैठ कर साढ़े आठ बजे रातके लगभग उस मुसलमानके घरपर पहुंचे। उस समय मकानमें ताला लगा हुआ था। वहाँपर कोई नहीं था। आसपास पूछनेसे पता लगा कि उस मुसलमानका नाम सुलतान है और वह घण्टा भर हुआ दो तीन आदमियोंके साथ बड़ी मस-

जिद्की ओर गया है। वहाँसे बड़ी मसजिद् कोई दो मील पर थी। सब लोग उधर ही चले।

जिस समय आर्यसमाजका दल बड़ी मसजिदमें पहुंचा उस समय वहां बिलकुल अंधेरा था। मसजिद्के अहातेका फाटक अस्तव्यस्त खुला था। पहले दो-चार आवाज़ें दी गयीं। जब कोई उत्तर नहीं आया तब आर्यसमाजके मन्त्रीने गाड़ीवालेको भीतर जाकर आहट लेनेको कहा। गाड़ीवाला भी मुसलमान था। भीतर जाकर उसने मसजिद्का कोना-कोना ढूंढ़ डाला, वहांपर कोई नहीं था। वह पीर साहबको जानता था। उसे मालूम था कि पीर साहब बीस-पचीस वर्षोंसे मसजिद्के कोनेमें एक कोठरीमें रहते हैं। वह कोठरीकी ओर बढ़ा। कोठरीमें जाकर उसने देखा, रक्तसे भीगे मौलवी साहब बेहोश पड़े थे। उनके आगे पीछे कोई नहीं था।

५

होशमें आते ही मौलवी रहमतुल्लाने रामभोलीकी सारी

बातें विश्वनाथ और आर्यसमाजके आदमियोंसे कहीं। उन्होंने कहा—

• "उसकी बातें ज्यों ही खत्म हुईं त्यों ही रमजानके साथ तीनों बदमाश मुसलमान इस कोठरीमें दाखिल हुए। उन्होंने आते ही मुझसे पूछा कि वह कब मुसलमान बनाई जायगी। मुझे उस स्त्रीकी हालत पर बड़ा दुःख हुआ था। मैंने उनसे कहा—

'इसे मैं न तो मुसलमान बनाऊँगा और न तुम्हारे हाथोंमें लौटाऊँगा ही। तुम लोग सीधेसे यहाँसे चले जाओ नहीं तो अभी पुलीसको खबर कर दूंगा।

इसपर वे बिगड़ खड़े हुए और जबरदस्ती करनेपर आमाद हो गये। जिसका नतीजा आपके सामने है। आप मेरी बात मानें वे हर्गिज मुसलमान नहीं हैं। असली काफिर वे ही हैं। उनके पीछे रमजान गया है। उसे भी उन्होंने कुछका कुछ पट्टी पढ़ाया था। सब बातें जाननेपर उसकी आँखें खुली हैं। आप ठहरें, वह आता ही होगा।'

जिस समय रमजान लौटा उस समय रात्रिके ग्यारह बज गये थे। उसने कहा कि वे सब रामभोलीको लेकर

उसी पुलिस सिपाहीके घर गये हैं। अभी चलनेसे उनका पता लग सकता है। वे आसानीसे पकड़े जा सकते हैं।

हजार रोकनेपर भी ईमानदार मौलवी रहमतुल्ला न रुके। सबके साथ वह भी बदमाशोंकी तलाशमें चले।

* * * *

बदमाशोंके अड्डे पर पहुंचनेसे पूर्व आर्यसमाजवालोंने पासके थानेसे चार पाँच सिपाही और एक हिन्दू पुलीस इन्सपेक्टरको भी अपने साथ ले लिया। जिस सिपाहीके घरपर रामभोली पहुंचायी गयी थी वह स्टेशन पुलीसका आदमी था। स्टेशनके पास ही उसका छोटासा मकान था। मकानपर पहुंचकर पुलीसके एक आदमीने उसे पुकारा। भीतरसे आवाज़ आयी—

'कौन है?'

'हम हैं, थानेके सिपाही।'

इसके बाद हजार पुकारनेपर भी भीतरसे आवाज़ न आयी। लाचार दर्वाजा तोड़कर लोग भीतर घुसे। मकान बहुत छोटा था, उसमें तीन-चार कोठरियाँ मात्र थीं जिनमेंसे एक भीतरसे बन्द थी। उसके भीतरसे धीमी

रोशनी दिखाई पड़ रही थी और सुनाई पड़ रही थी किसीके कराहनेकी आवाज। उस दर्वाजेको भी तोड़कर ज्योंही लोग भीतर आये त्योंही तीनों बदमाशोंने पुलीस और उसके साथियोंपर सशस्त्र आक्रमण किया। उनके हाथोंमें बड़े-बड़े छुरे थे। थोड़ी देरतक खासी मुठभेड़ हुई पर अन्तमें तीनों गिरफ्तार हो गये। उन्हें गिरफ्तार करते ही सबके सब कोठरीमें रामभोलीकी तलाशमें घुसे। आह! बेचारी एकदम मुर्दासी बनी एक चार-पाईपर पड़ी थी। घण्टे आध घण्टेकी मेहमान थी। उसकी यह दशा देखते ही पागलकी तरह सेठ विश्वनाथ उससे लिपट गये—

"अभागिनी! प्यारी!! तेरी यह दशा!!!"

अभागिनी हिन्दू ललना इसी घड़ीके इन्तज़ारमें ही तो थी। पतिको देखकर उसकी गई लज्जा लौट आई। उसकी आँखोंसे आंसुओंका श्रोत फूट निकला। पतिके दुपट्टेसे अपने अङ्गको छिपानेकी चेष्टा करती हुई वह बोली—

"नाथ! दूर ही रहिये। अब मैं आपके स्पर्श-योग्य

नहीं हूं। मैं अभागिनी हूं—कलंकिनी हूं। मेरा सर्वस्व नष्ट हो चुका है। आप दूर रहिये। वह देखिये—वह! मुझे मृत्यु पुकार रही है। मैं अब नरककी ओर जा रही हूं पर प्यारे, मेरी एक विनती मानियेगा। आप भी मुसलमान हो जाइयेगा। हिन्दूधर्म अब भले आदमियोंके योग्य नहीं रह गया। हिन्दू विजातियोंसे अपनी बहिन-बेटीका उद्धारतक नहीं कर सकते। वे एकदम नपुंसक और निर्लज्ज हो गये हैं। मुसलमान उनसे हज़ार गुना अच्छे हैं। आप भी मुसलमान हो जाइये। बस—नाथ...।"

सबके देखते देखते नराधम हिन्दुओंकी कन्या—दुःखिता, अपमानिता और पीड़िता कन्या—अपने पतिके दुपट्टेमें मुंह छिपाकर महा अशान्तिकी गोदमें सो गई! राम, कृष्ण, भीष्म, प्रताप, गोविन्द और शिवाजीके वंशमें जन्म लेनेका ऐसा भीषण दण्ड किसे मिला था?

* * * *

पागलकी तरह अपनी प्रियतमाको हाथोंमें उठाये विश्वनाथ कोठरीके बाहर निकले। उन्हें उसके मरनेका विश्वास नहीं था। उन्होंने पुकारा—

"रामभोली ! भोली !! प्यारी !!!"

पर उत्तर कुछ भी न मिला। मौलवी रहमतुल्लाकी मनुष्यता इस दृश्यको देखकर कांप उठी। उन्होंने विश्वनाथके पास आकर प्यारसे कहा—

"विश्वनाथ !"

"हां—हां, मुझे याद है, मौलवी साहब। मैं उसकी बात पूरी करके ही मरूंगा। आप ही मेरे दीक्षक होंगे। मैं अभी इस्लाम धर्मकी दीक्षा लूंगा। बोलिये आप तैयार हैं ? अल्लाहो अकबर !"

मौलवीने दुःखसे अधीर होकर कहा—

"अगर आपसमें लड़ना आजकलकी है मुसलमानी।
मुसलमां हूं तो सबको नामुसलमां करके छोड़ूंगा॥

अगर इस्लाम परायी बहू-बेटियोंकी इज्जत लेना, भाइयोंको तंग करना और भले आदमियोंके रास्तेमें कांटे बोना सिखाता है तो—ऐ पाकपरवरदिगार, जल्द इसका खात्मा कर !"

ब्राह्मण
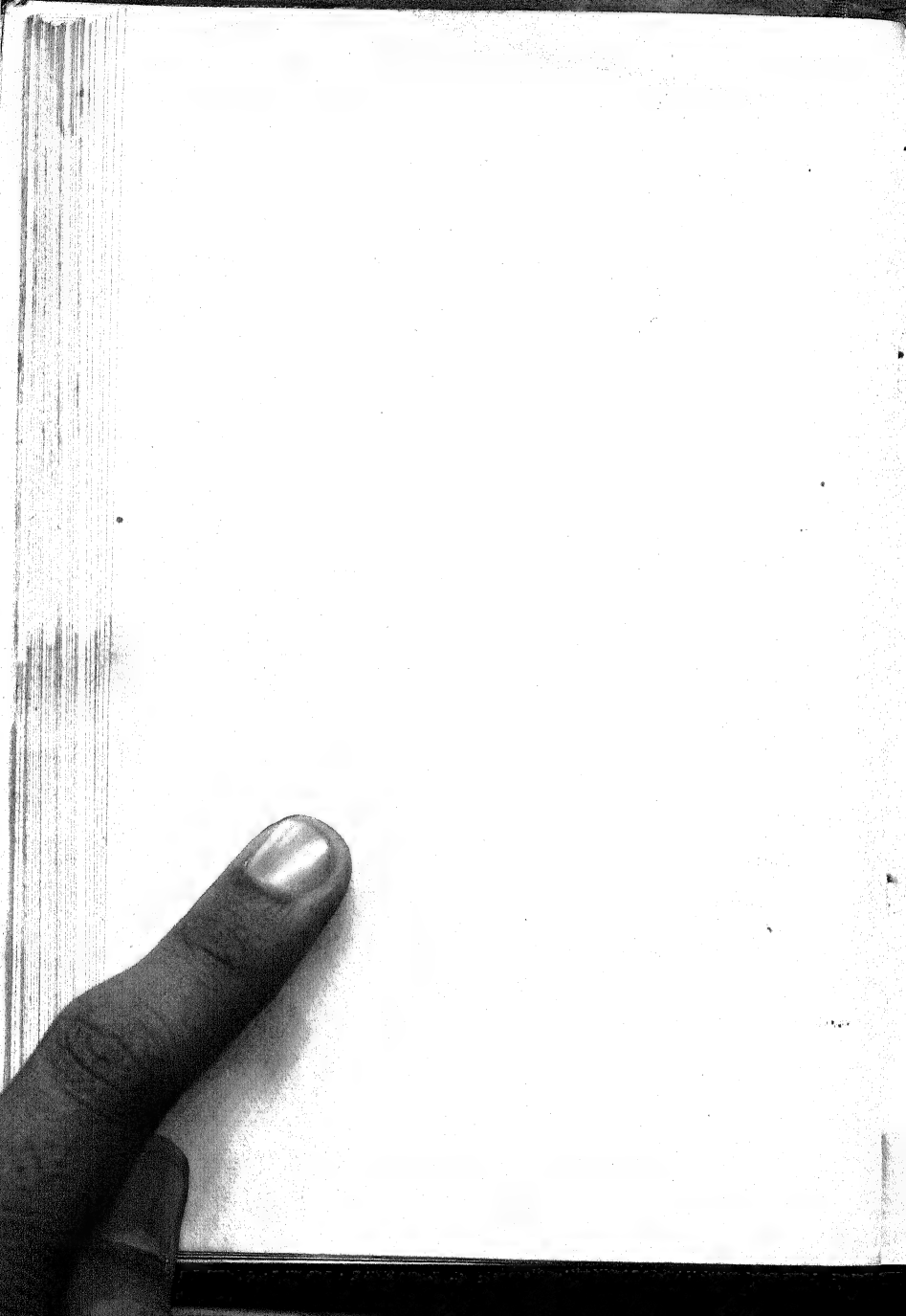
१

ब्राह्मण जाति किसी समय हमारे देशका मस्तिष्क थी। इसके साक्षी इतिहास, पुराण और स्मृतियां हैं। उक्त जातिका एक दिन था, जब कि उसके एक सूत्रधारी बालकको भी देखकर बड़ेसे बड़े राजा-महाराजा अपना आसन छोड़ दिया करते थे और करते थे उसके पुण्य-पदरजको अपने शिरपर धारण! हमारे देशके अधिकतम सद्ग्रन्थ इसी जातिके पूर्वजोंका प्रसाद हैं।

परन्तु आज इस जातिको कालने कितना जर्जर,

पतित और घृणित कर दिया है ? कोई ठिकाना है ? अब ब्राह्मणोंके हाथमें न तो अपना पूर्व गौरव है, न विद्या है, न तप है, न निष्ठा है ! कुछ भी नहीं है !! हाय !!!

× × × ×

नन्दू मिसिरका क्षुद्र भवन, आजसे दस वर्ष पहले काशीसे डेढ़ कोसकी दूरी पर, शिवपुरमें था। यद्यपि इस समय उनके—"रहा न कोउ कुल रोवन हारा"—परन्तु उस समय उनके परिवारमें प्रायः सभी थे। एक पुत्र था, जिसकी अवस्था बीस वर्षकी थी, तीन वर्षकी एक कन्या थी और थी स्त्री।

हां, भूल रहा था, उन्हें एक कन्या और थी। वही तो हमारी कहानीकी नायिका है। उस समय उसकी अवस्था उन्नीस वर्षकी थी और वह विधवा थी। उसीकी शादीके लिए नन्दूको अपना घरतक महाजनके हाथोंमें रखदेना पड़ा था। लड़केका नाम था बलदेव, पर, लोग उसे बलई कहा करते थे। विधवा कन्याका नाम था जानकी। शेष लोगोंके नाम—लापरवाहीके कारण मेरी स्मृतिके भण्डारसे गुम हो गये।

दरिद्रताका दुलारा, मूर्ख, दुर्बल नन्दू मिसिर काशीकी गलियों और सड़कोंपर भीख मांगता फिरता था। यद्यपि उसके लिए काले अक्षर भैंस बराबर थे, फिर भी वह इस कलासे—लोगोंको ठगनेमें बड़ा निपुण था। बलई एक गुण्डेका शिष्य और अनन्त-धूर्तता-आकर गुण्डा-युनिवर्सिटीका तीव्र-धी विद्यार्थी था॥

२

पूरे बारह सौ दण्ड और दो हजार बैठक करके बलई उठा है। उसके आस-पासकी पृथ्वी उसके पसीनेसे एक दम तर है। अब वह अपने मित्रोंके शरीरमें तेल लगावेगा और फिर डेढ़ सेर दूध पीकर अपने उस्तादके यहां जायगा। बलईके उस्तादको यदि गुण्डोंका एजेण्ट कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। वह लोगोंसे रुपये लेकर गुण्डे 'सप्लाई' करता है। जरूरत पड़नेपर रुपये आठ आनेके लिए भी वह किसीके सिरपर एक लठ जमा या जमवा सकता है। वह भी ब्राह्मण है!

हां, बलईके उक्त मित्रोंके नाम भी सुन लीजिये।

उसके सात मित्र हैं। उनमेंसे किसीका रंग घोर काला, किसीका लाल और एकाध श्वेतांग भी हैं। उनके नाम हैं दुख-भंजन, जमदण्ड, सिरफोड़क, बजरंग, शनीचर, मंगल और खलगंजन! ये सबके सब चार-चार हाथ लम्बे और तीन इंच मोटे हैं—सभी वंश-वंशोद्भूत हैं।

'सिरफोड़क' को तेल लगाते-लगाते बलईने पुकारा—

'माई' अरे माई !!'

"क्या है बेटा!" कहती हुई पैंतीस वर्षकी अवस्था-वाली बलईकी माता सामने आई।

"दूध कहां है!" बलईने कहा।

माता—आज पैसा कहां थे जो दूध लाती?

बल०—और कल जो मैंने तुम्हें आठ आने दिये थे।

माता—उन्हीं पैसोंसे तो कल घरमें लोगोंके मुखमें दाना गया। आजकल तुम्हारे पिताको तो कुछ मिलता ही नहीं।

बलई ज़रा कुरुख हो गया। उसने 'सिरफोड़क' को ज़ोरसे पृथ्वीपर दे मारा।

"तुमने मेरे पैसे क्यों खर्च किये। उस ससुरेको एक

पैसा भी नहीं मिलता तो मैं क्या करूँ ? उसके और तुम लोगोंके भोजनका मैंने ठीका लिया है क्या ? मैं कुछ नहीं जानता, मेरा दूध लाओ !"

माता—उन्हें गाली क्यों देता है रे ? क्या हम सब तुम्हारे कोई नहीं हैं ! वाहरे कलयुगी लड़के !

बल०—हमारा दूध दो । नहीं तो कहे देता हूं अनर्थ हो जायेगा ।

माताके नेत्रोंमें अश्रु आगये, उसका गला, अपमान और दुःखसे अवरुद्ध हो गया । वह बोली :—

"मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है। दूध ले कहाँसे आऊँ ?"

"तब तूने मेरे पैसे क्यों खर्च किये । क्या तेरे दादा-की कमाई थी !"

"और हमारे बाप-दादाका नाम न लेना । क्या इसी सुखके लिए तुझे इतना बड़ा किया है ?"

जननी फूट पड़ी । पर्वत-च्युत-निर्झरकी भांति उसके अश्रु झरने लगे ! शायद अपने मायकेके विषयमें अप-मानजनक बातें सुन कर स्त्रियोंको अधिक कष्ट होता है ।

माँको रोते देख कर बालकको और भी क्रोध चढ़ा। सिरफोड़क पुनः पृथ्वी पर पटके गये। उसने कहा—

"इस नकलसे काम नहीं चलनेका। मुझे दूध ला दो। नहीं तो तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।"

माता अब न सह सकी। उसने कहाः—

"मैं नकल करती हूं? अच्छा वही सही। आ मेरा सिर तोड़। देखूं तेरी हिम्मत। मारता क्यों नहीं? मार!"

"तो तुम दूध न दोगी?"

"नहीं"

"न दोगी?"

"नहीं। नहीं। नहीं। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है दूध कहांसे लाऊँ?"

"न दोगी चुड़ैलकी नानी! सूअरकी दादी!"

बलिष्ट बलईने एक ही धक्केसे अपनी माताको जगन्माता बसुन्धराकी छाती पर सुला दिया और लगा सिरफोड़कसे मारने! दो ही हाथोंमें माताकी आवाज़ बन्द हो गई। शोर सुन कर आस-पासकी अनेक स्त्रियां नन्दूके घरमें घुस आईं। पर बलईका रुद्ररूप देखकर

सबके होश उड़ गये। किसीकी हिम्मत न पड़ी जो उसकी माताकी रक्षा करती। जानकी अपनी छोटी बहिनको साथ लेकर कुएं से पानी लेने गई थी।

बलई तुम ब्राह्मण हो माताका आदर ऐसे ही किया जाता है? धिक्!

३

"कहो नन्दू महाराज आज दोपहरको ही क्यों लौट पड़े? गहरी लाये हो यार!"

नन्दूके मित्र एक दूसरे भिक्षुक ब्राह्मणने उससे पूछा।

नन्दू०—हां भाई, आज कई दिनों बाद मालिकने कुछ दे दिया है।

मित्र—कुछ दे दिया है? अरे इतनी बड़ी गठरी—यह लोटा-थाली। कहीं शैय्या-दान पा गये क्या? सच बताना।

नन्दू—सच पूछो तो यह बड़े मेहनतकी गठरी है। जान बच गई। कहीं पकड़ा जाता तो बस—चार-छः

महीनेसे कमका ठिकाना न लगता। तुमने मेरे हाथों और पैरोंमें बँधे इन चिथड़ोंको अभी नहीं देखा।

मित्र—देखता तो हूं। क्या आज कोढ़ीका स्वांग बनाया था ?

नन्दू—हां! पञ्चगंगा घाटपर इसी प्रकार कोढ़ी बना हुआ बैठा था और भोले-भाले उल्लू यात्रियोंसे दयाकी भिक्षा मांगता था। भिक्षा तो कुछ भी न मिली हां, ईश्वर-की कृपासे एक यात्रीकी इस गठरीको घुमा लाया हूं।

ईश्वर! तुम भी धन्य हो। सभी तुम्हारी कृपाका सदुपयोग किया करते हैं। चोरकी चोरी, डाकूका डाका, तपस्वीकी तपस्या, अत्याचारीका अन्याय, सभी तुम्हारी कृपापर निर्भर करते हैं। और, ब्राह्मण तुमने तो गठरी घुमाकर कमाल ही कर डाला। नन्दू! तुम उन्हीं स्वनाम-धन्य ऋषियोंकी सन्तान हो न जिनके दर्शनोंसे पातक-पुञ्ज पलायन कर जाते थे? तुम्हारे यह कर्म? तुम्हें मृत्यु भी नहीं पूछती?

जल्दी-जल्दी नन्दू घर आया। उसे देखते ही उसकी

छोटी कन्या, जिसका सुकुमार मुख उदरकी भीषण ज्वालासे झुलस रहा था, दौड़ी हुई उसके पास आई—

"बाबा, क्या ऐ? बूक लगी ऐ, मिथाई लाए ओ? दो, बूक लगी ऐ। बैयाने माईको माला ऐ।"

अन्नपूर्णाके दर्शनोंसे बलईकी माताके शरीरकी पीड़ा एक दम नहीं तो अधिकतम दुर हो गयी। एक परदेशीको भूखा रखनेका प्रबन्ध कर नन्दूने अपने परिवारका और अपना पेट भरनेकी व्यवस्था की।

अपमानिता, प्रताड़िता और पीड़िता जननीने अपने मुखमें अन्न डालनेके पूर्व बलईका स्मरण किया—उसके हिस्सेका भोजन अलग रख दिया गया।

मातृ-हृदय! क्या स्वर्ग तुमसे भी सुन्दर होता है?

४

भिक्षुकने पेटको पीठसे सटाकर एक अनभिज्ञ राह चलते सज्जनसे कहाः—

"दाताकी जय हो! तीन दिनसे भूखा हूं। कुछ कृपा हो जाय।"

"नौकरी करो—नौकरी।" जरा थम कर पथिक ने कहा।

भिक्षुक—हमें कौन नौकरी देगा बाबा! हमने कुछ पढ़ा-लिखा तो है ही नहीं।

"तुम कौन लोग हो।"

भिक्षुक—ब्राह्मण।

"कौन ब्राह्मण, पांड़े।"

भिक्षुक—नहीं भैया, मिसिर। कुछ दया हो जाय। हम भूखे मिसिर हैं।

"कौन मिश्र ?"

क्या मिश्र भी कई प्रकारके होते हैं ? यह तो नन्दूको नहीं ज्ञात था। उसने कहा—

"यह सब पूछकर क्या करोगे। कुछ देनेकी कृपा करो—बड़ी भूख लगी है।"

"गायत्री जानते हो ?"

भिक्षुक—हां हां सुनाऊं—

ओं इन्द्रो, मरुत्वान्, मघवा, बिडौजा, पाकशासनः। वृद्ध-श्रवा, शुनाशीर, पुरुहूत पुरन्दरः।

बात यों है। एक दिन नन्दू महाराजने सुना कि गायत्रीको सुनकर भूत भाग जाते हैं। तभी इन्हें गायत्री सीखनेकी इच्छा हुई क्योंकि शिवपुर और काशीके बीच-में एक स्थान ऐसा पड़ता था जहांपर लोग कहा करते थे कि भूत रहते है। वहींसे होकर नित्य नन्दूको जाना पड़ता था। अतः वे गायत्री सीखनेके लिए विवश हुए! आपने एक दिन किसी स्कूली लड़केसे गायत्री बताने को कहा। उसने बड़े परिश्रमसे उक्त गायत्री नन्दू पण्डितको सिखलाई थी! अस्तु।

गायत्री सुनकर अपरिचित व्यक्ति ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा—

"देवता, यह तो 'अमरकोष'-का एक श्लोक है। खैर, चलो तुम हमारे यहां नौकरी किया करो। दस पैसे रोज मिलेंगे।"

ब्राह्मण कृत-कृत्य हो गया।

५

जिन महाशयने दस पैसे रोजपर नन्दूको अपना

नौकर बनाया है वह एक बनिया हैं। उनके पास रुपयोंकी कमी नहीं। उनकी एक बिसातबानेकी बड़ी दूकान है। घरपर हुण्डी भी चलती है। पांच ही रुपये मासिकपर "पीर, बवर्ची भिश्ती खर" पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। पर नन्दूके गुणोंसे उन्हें शीघ्र; ही अप्रसन्न होना पड़ा। वह काम करनेमें बड़ा सुस्त, बोलनेमें तेज, बेवकूफ और गन्दा था। अतः आये घड़ी बणिक महोदयको ब्राह्मणके पदकी प्रतिष्ठाके लिए 'सूअर' 'गदहा' इत्यादि शब्दोंका प्रयोग करना पड़ता था। नौकरीसे छुड़ा देनेकी धमकी भी दी जाती थी।

बनियेके साधारणसे साधारण मित्रकी प्रतिष्ठा, ब्राह्मण-की दृष्टिमें किसी बादशाहसे कम नहीं थी। जब वणिक-राज अपनी मित्र-मण्डलीमें बैठकर ब्राह्मणको पुकारते थे कि—"मिसिर! पानी तो दो" तब ब्राह्मण एक विचित्र उत्सुकता-पूर्ण दृष्टिसे देखता हुआ ग्लासमें पानी लेकर बाबू साहबके सम्मुख जाता था।

एक दिन अनेक मित्रोंके साथ बनिया कहीं घूमने

जानेको तैयार था। जूतेमें धूल लगी देख कर मिसिरकी पुकार हुई—

"मिसिर जरा अंगोछेसे मेरा जूता तो पोंछ दो।"

मिसिरको आज तक ऐसी आज्ञा नहीं मिली थी। वह बनियेका जूता कैसे पोंछे ? उसे हिचकिचाते देख बाबू साहबको क्रोध आगया। वे बोले—

"बहिरा हो गया है क्या ? सुनता नहीं ?"

ब्राह्मण—सरकार मैं जूता नहीं पोंछ सकता।

बनिया—और तनख्वाह ले सकते हो। सूअर बदमाश। चल जूता पोंछ।

ब्राह्मणको भी आज न जाने क्या हो गया। उसने कहा—

"आप इतनी गालियां क्यों देते हैं ? मैं जूता नहीं पोछूंगा।"

"तो निकल जा—चला जा कमरेके बाहर। साला, पाजी।"

क्रुद्ध ब्राह्मण कमरेके बाहर जानेको प्रस्तुत हुआ। दो पग आगे बढ़ा भी। पर, कल खायगा क्या ? इसका

ध्यान आते ही उसका क्रोध लुप्त हो गया। पेटके सामने ब्राह्मणत्वको झुकना पड़ा। बनियेका पादत्राण ब्राह्मणके नेत्र-जलसे धोया और उसके अगौंछेसे पोंछा गया।

दूसरा युग होता तो शायद पृथ्वी कांप उठती, सूर्य्य अन्धे हो जाते, चन्द्रमा जल उठता—बनियेका सर्वनाश हो जाता! परन्तु, इस युगमें तो ऐसा कभी नहीं होता।

६

"रोते क्यों हो मिसिर? इधर आठ दिनोंसे कहां थे!"

मिसिर फिर भी रोता ही रहा।

बाबू साहबने पुनः प्रश्न किया—

"कुछ बताओ भी—क्या हुआ? क्यों रोते हो?"

मिसिर—सर्वनाश हो गया सरकार! हमारा घर उजड़ गया। मैं लुट गया।

बाबू—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते? तुम्हारे यहां चोरी हो गई है क्या?

मिसिर—नहीं बाबू, डाका पड़ा है। ईश्वरने मुझे

लूट लिया। चार दिनके भीतर ही मेरी कन्या, पुत्र और स्त्री हैजेसे मर गये। मैं लुट गया।

ब्राह्मण बिलख-बिलख कर रोने लगा। वह कहने लगा—

"मुझ पातकीको मौत भी नहीं पूछती। हाय, अभी न जाने क्या-क्या मेरी दुर्दशा होगी। मेरी स्त्री—पुत्री—पुत्र—हाय !!"

बाबू साहबने पूछा—

"अब तुम अकेले हो मिसिर !"

मिसिर—नहीं, अभी एक कन्या है। वही अभागी अब मेरा सहारा है।

बाबू—वह कितनी बड़ी है ?

मिसिर—प्रायः बीस वर्ष की। वह विधवा है बाबू ! मैं बड़ा अभागा हूं।

बाबू—विधवा है ! तुम कहते थे कि तुम्हारा मकान किसी महाजनके यहां गिरवीं रक्खा है। फिर, अब तुम वहां शिवपुरमें व्यर्थ क्यों दुःख झेलोगे ? मेरे ही यहां

ब्यालू ले कर गई। बाबू साहब अकेले पलंगपर पड़े थे।

जानकीने पलंगके पास थाली रख दी। वह अब नीचे जाना ही चाहती है।

बाबू साहबने कहा—

'जानकी !'

उत्तर कुछ नहीं मिला।

"जानकी यह सब सम्पत्ति तुम्हारी हो जायगी।"

जानकीने धीरेसे कहा—

"कैसे ?"

बाबू—तुम मेरे साथ शादी करलो।

जानकीका मुख मारे लज्जाके लाल हो गया। उसके हृदयकी मादकता क्षण भरके लिए दूर हो गई। उसने कहा—

"आप यह क्या कहते हैं ? मैं विधवा हूं, ब्राह्मणी हूं।"

बाबू साहबने कहा—'वाह ! रस्सी जल गई पर ऐंठन ज्योंकी त्यों है। इसीसे तो तुम्हारी यह दुर्दशा है। दिन-रात मजूरी करते-करते अपने स्वर्गीय यौवनका

नाश कर रही हो। यदि ब्राह्मणी होनेका गर्व था तो बनियेकी नौकरी क्यों की ? यह सब व्यर्थ है तुम मेरी स्त्री हो जाओ।"

जानकीके मनने कहा—"ठीक है, इतनी बड़ी सम्पत्ति, यह राजसुख छोड़ना भूल है, सो भी केवल ब्राह्मणी और बनियेके नामपर। विधवा होनेके कारण।"

वह बोली—

"मैं...तो...पर पिताजी।"

बाबू०—तुम्हारे पिताको मैं कल ही अपने यहांसे छुड़ा दूंगा। फिर तो हम लोग स्वतन्त्र हो जायंगे न।

बलईकी बहिनने कहा—'हां।'

पाप चाहे अन्तमें पुण्यसे पराजित होता हो परन्तु पहले तो उसकी तूती बोलती ही है। तभी तो जानकीने अपने जन्म-दाता पिताको भी लात मार कर अपने क्षणिक सुखोंकी व्यवस्था की।

इस घटनाके तीसरे दिन जानकीने सुना कि उसके

वृद्ध पिताने-बनियेके घरसे निकाले जानेके बाद गंगाकी गोदमें शरण ले ली।

*   *   *   *

जानकी अधिक दिनोंतक आनन्द न कर सकी। दो वर्षके भीतर ही क्षय रोगसे पीड़ित होकर वणिकराज यम-सदन सिधार गये। उनके मरनेके बाद जानकी उस घर-मेंसे निकाल दी गई।

बीचकी घटना सुनकर क्या कीजियेगा? हां इस समय वह कुष्ठ रोगसे सड़-गल रही है। इच्छा हो तो दशाश्वमेध घाटपर जाकर देख आइये।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"

क्षत्रिय

१
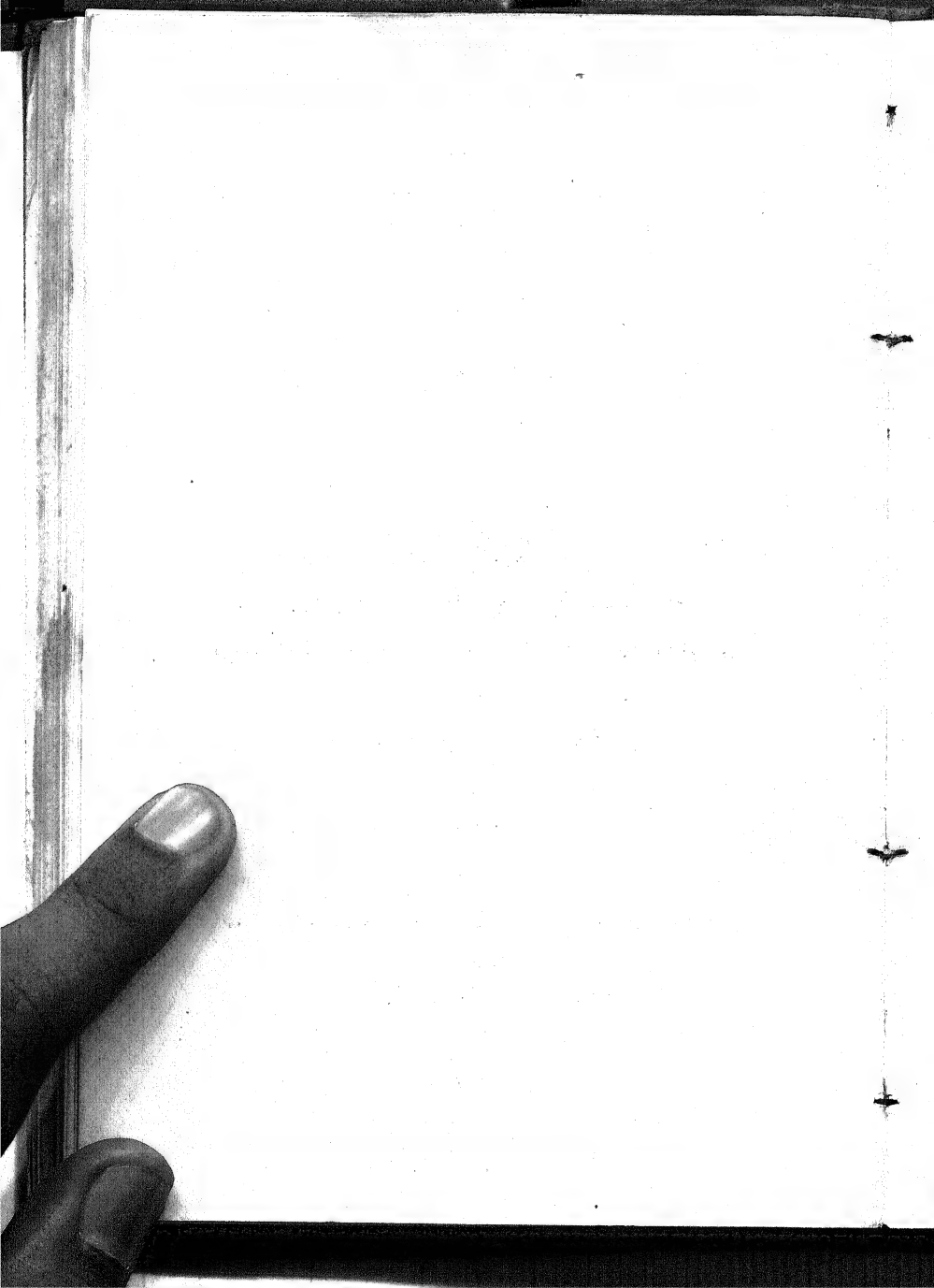
पश्चिमाचल-स्थित इस लाल मुहँवालेको जानते हो इसका नाम सूर्य है। अत्याचार-पीड़ित-प्राणि-समुदाय इसे और भी कई नामोंसे पुकारता है। वे सब नाम इसके अत्याचारके द्योतक हैं। जैसे, चण्डकर, मार्तण्ड, तपन आदि।

जिस चण्डकरको अधिकतर हम सुफेद मुखका देखते हैं, वही नित्य प्रति सायं और प्रातः काल हमें अपना खनो मुख क्यों दिखाता है? शायद इसका हाल आप न जानते

हों ! प्रभात समय यह रक्त-पान करनेकी प्रतीक्षा करता है और उसीके आवेशसे इसका मुख लाल हो जाता है और निशा सुन्दरीके आगमनके पहले तो इसके मुखमें सच-मुचका रक्त लगा रहता है ।

अपनी प्रजाके प्रति इसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर रहता है । तिसमें आजकल ? इस ग्रीष्ममें ? जब चाहता है तभी कृषकोंके मुखका भोजन छीन लेता है, शस्य-श्यामला वसुन्धराकी हड्डी-हड्डी चमका देता है, स्वच्छ-मानसको एक दम शुष्क कर देता है और प्राणियोंको बिना पानीके मार डालता है !!

सब कुछ हो—पर अत्याचारियोंका नाश अपने आपही हो जाता है । यह देखिये न—इस चण्डकरका उदय जिस पूर्व प्रदेशसे हुआ था वहां अब इसके लिए स्थान नहीं । वह पश्चिमके अञ्चलमें ही अपना मुहँ काला करने जा रहा है । क्यों ? और जलाओ ! और अत्याचार करो !! डूबते क्यों हो देवता !!!

* * * *

पार्श्वसिंहके घरसे देवकीका घर मुश्किलसे पन्द्रह-

बीस पगोंपर था। आज उनके एक काशीवासी मित्रने तारसे समाचार भेजा है कि वे इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी बी० ए० परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। वे यही समाचार अपनी भावी प्रियतमा देवकीको सुनाने जा रहे हैं।

पारथसिंह देवकीकी ड्योढ़ीके भीतर पैर रखने ही जा रहे थे कि उसके भीतरसे एक अधेड़ आदमी निकला। उसने सकपकाकर कहा—

'ठाकुर साहब सलाम !'

'सलाम जमादार। इधर कैसे ?'

'जरा मोहनसिंहसे मिलने गया था। भाई उन्हें तो मुक़दमोंसे फुर्सत ही नहीं मिलती।'

'तो वे नहीं हैं क्या ?'

'हां, वे गोरखपूर गये हैं। आपहीके पिताके कामसे गये हैं और आपहीको ज्ञात नहीं !'

'भाई दिग्गज ! अभीतक मैं गृहस्थीसे दूर ही रहता हूं।

'तो लौट चलिये। मोहनसिंहजी तो हैं ही नहीं।'

जरा रूक्ष होकर पारथने कहा—

'मुझे जो घरमें हैं उन्हींसे काम है।'

'अच्छा तो जाओ न सरकार ! बिगड़ते क्यों हो ?

जमादार या दिग्गजसिंह चला गया। पारथने उसे जब देवकीके घरसे निकलते देखा तो रोमांच हो आया था। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मोहनसिंहकी अनुपस्थितिमें दिग्गज उनके घरमें गया था तब उनका मुख क्षण भरके लिए लाल हो गया था। और, जब दिग्गजने कहा कि 'लौट चलिये'—तब, उनके मुखपर एक विचित्र घृणा-भावका उदय हुआ था ! क्यों ?

देवकीकी माताको सलाम कर पारथसिंहने पूछा—

'अभी यहां पुलीसका जमादार दिग्गजसिंह किस लिए आया था ?'

'देवकीके पितासे मिलनेके लिए।'

उत्तर सुनकर पारथने कहा—

'मां मैंने कई बार कहा है, पुलीसवालोंकी मित्रता ठीक नहीं होती। ये रुपयोंके आगे अपने-पराये किसीको

भी नहीं देखते। दिग्गजका यहां अधिक आना मुझे बड़ा बुरा लगता है।'

माता—पर, बेटा जमींदारीका काम ही ऐसा है कि बिना पुलीसवालोंकी सहायताके ठीक नहीं चलता। देवकीके पिता तुम्हारे पिताके लिए ही दिग्गजको मिलाये रहते हैं

बात उड़ाकर देवकीकी मांने पूछा—

'तुम्हारे इम्तहानका क्या हुआ ?'

'आज तो तार आया है। मां, मैं पास हो गया हूं।'

इतना कहकर पारथसिंहने देवकीकी माताका पदरज सिरपर धारण किया। माता रोम-रोमसे आशीर्वाद देने लगी। कुछ इधर-उधरकी बातें हो जानेपर माताने कहा—

'कुछ पानी पीओ बेटा !'

'नहीं मां ! मैं अभी घरसे पानी पीकर आता हूं। हां, दो एक पानके बीड़े ला दो।'

माता पान लेनेके लिए उठ गयी। अभी तक देवकी एक तरफ सिर गाड़े चुपचाप बैठी थी। माताके अदबसे

पारथ भी कुछ नहीं बोल सकते थे। अब अवसर देखकर पारथने कहा—

'कैसा जी है देवकी !'

देवकीने 'नासा मोरि नचाइ दृग' कहा—

'कलाईमें न जाने क्यों दर्द हो रहा है।'

'दर्द हो रहा है ? देखूं तो। कौनसा ऐसा पहाड़ उठाया था ?

देवकीका हाथ अपने हाथोंमें लेकर पारथसिंह कण्टकित कलेवर हो गये। शायद बी० ए० पास होनेके समाचारसे भी देवकीका हाथ अधिक प्रिय था।

'देवकी अब क्या कहती हो ?'

उसकी अंगुली चटकाते-चटकाते पारथने पूछा—

देव०—कैसा ?

पार०—तुमने कुछ कहा था।

देव०—मैंने ? क्या कहा था ?

पार०—यही कि बी० ए० पास हो जानेपर तुम मेरे साथ......।

पारथ आगे न बोल सके। देवकी इतने हीसे समझ गई। उसने कहा—

'मुझे तुम देवी कहा करते हो न ?'

पार०—हाँ।

देव०—देवियां कैसे प्रसन्न होती हैं जानते हो ?

बी० ए० पास पारथसिंह उक्त प्रश्नका उत्तर तो अवश्य जानते रहे होंगे पर, 'बतरस लालच' से कहा—

"नहीं"

देव०—प्रेम कैसे मिलता है ? जानते हो ?

पार०—नहीं देवी ! तुम्हीं बताओ। तुम्हारे सम्मुख आनेपर मैं एकदम अजान हो जाता हूं।

देव०—दोनों प्रश्नोंका उत्तर एकही है और वह है 'बलिदान !' बलिदान करकेही तुम अपनी देवीको प्रसन्न कर सकते हो।

पारथसिंह देवकीका मुंह निहारने लगे। और देवकी उनसे अपना हाथ, यह कहकर छुड़ाने लगी कि—

"छोड़ो ! छोड़ो ! तुम्हारे हाथ तो बहुत कड़े हैं।

देवकी ! तुम तो मुझे रूप-गर्विता-सी जान पड़ती हो।

३

ग्रीष्म-सरकारका राज्य उलट रहा है। क्यों? भरे हुए अत्याचारके घड़ेपर क्रांतिकी ठेस लग गई है। अभी आधा घण्टा पहले यह दशा थी कि कहा नहीं जा सकता। चारों ओर ताप और अत्याचारकी धूम थी। शीतलताका कहीं नाम नहीं था। ग्रीष्मने उसे आजन्म द्वीपान्तरवास-की सजा दी थी। शीतल बात न जाने किस कारा-गारमें रोक रक्खी गई थी। घनश्यामका अस्तित्व तक लुप्त कर दिया गया था। लोग 'त्राहि! त्राहि!!' चिल्ला रहे थे। फिर भी कहीं त्राण नहीं मिलता था। परोसी हुई थाली होनेपर भी लोग भूखों मर रहे थे। ग्रीष्मके डरके मारे खाये कौन? सभी "पानी! पानी!!" पुकार रहे थे।

आखिरकार क्रांति हुई। बड़ी भीषण क्रांति हुई। उस क्रांतिकी उत्ताल-तरंगोंमें ग्रीष्म—अत्याचारी ग्रीष्मका अस्तित्व एकदम बह गया।

देखते देखते उक्त क्रांतिका आरम्भ हुआ। पहले

आकाशमें बादलका एक छोटासा टुकड़ा दिखाई पड़ा। यही आंदोलनका आरम्भ था। उस टुकड़ेको देखते ही ग्रीष्मने अपना भयंकर रूप प्रगट किया। पर वाह ! क्षण भरमें आकाशभरमें श्याम रंगके बादल छा गये। वह दृश्य देखकर पीड़ितोंके हृदय नाच उठे !

इसके बादही तो क्रांतिकी आंधी आई। उस आंधीने अपने भयंकर वेगसे ग्रीष्मके साम्राज्यकी जड़ोंको हिला दिया। 'हो ! हो' कर वह आंधी अपना ताण्डव दिखा रही थी—इतनेहीमें उसे घनश्यामकी सहायता भी मिली। वह भी पातकी ग्रीष्मपर बरस पड़े।

उससे पीड़ितोंको जीवन मिलने लगा और उस आंधीने तो गजब ढा दिया। जिन वृक्षोंने शक्ति रखते हुए भी पीड़ितोंकी सहायता नहीं की थी—उन्हें वायुदान नहीं दिया था। वे मूलसे उखाड़कर भू-पतित कर दिये गये। जिन खपरैलोंने अपने हृदयके छिद्रों द्वारा सहायता देकर ग्रीष्मसे सहयोग किया था और पीड़ितोंको और भी पाड़ित किया था—वे सातवें आकाशपरसे पृथ्वीपर ऐसे पटके गये कि उनकी हड्डी-पसली तक चूर-चूर हो गयी।

अब चारों ओर शान्ति है। सभी हरित-वदन हैं।

* * * *

बी० ए० पास पारथसिंहकी बुद्धिमानी तो देखिये। उन्होंने देवकीके 'बलिदान' का अर्थ जीव-बलिदान लगाया। इसके अनेक कारण थे। उन्होंने बालपनमें अपनी मातासे सुना था कि बड़ासे बड़ा काम भी देवीको बलिदान चढ़ानेसे क्षणमात्रमें सिद्ध हो जाता है। यहां तक कि पारथकी उत्पत्ति भी उसी जीव-बलिका ही फल है। फिर क्या ?

एक बात और भी थी, जिससे पारथसिंह चिन्तित थे। उन्हें ऐसा विश्वास था और वह बहुत ठीक था कि जमादार दिग्गजसिंह भी देवकीको चाहता है। उसकी पहली स्त्री मर चुकी थी और वह मोहनसिंहकी जात-पाँतका भी था इसीलिये उसने अपनी उक्त इच्छा ठाकुर मोहनसिंहके प्रति प्रकट भी की थी। मोहनको ऐसी आशा कहां कि उसका स्वामि-पुत्र अपने नौकरकी कन्यापर मुग्ध है। अस्तु ; वह जमादारके साथ अपनो देवकीको ब्याहनेको नीम राजी भी था।

इन सब बातोंको इधर-उधरसे पारथसिंहने सुना है।

दिग्गजसिंहके आचरण भी इसके साक्षी हैं—इसीलिये इस बिषयमें पारथको देवी-देवताओंकी सहायता आवश्यक मालूम हुई। पारथसिंहको विश्वास है कि देवकीकी 'बलिदान' वाली युक्तिसे वह अवश्य अपनी इच्छा पूर्ण कर सकेगा।

आंधी-पानीके थमते ही वह अपने घरके इष्टदेवालयमें गया। वहां एक वेदीपर रेशमकी डोरीमें गूंथकर एक सुवर्ण-निर्मित देवीकी प्रतिमा रखी थी। पास ही दो तीन गँड़ासे, बर्छे, तलवार आदि भी टंगे थे। एक तलवार हाथमें लेकर क्षत्रिय-कुमार प्रार्थना करने लगा।—

"मातेश्वरी! मैं शस्त्र लेकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आगामी मंगलवारको आपके चरणोंपर इस ग्रामके सबसे बलिष्ट भेड़ेकी बलि दूंगा।

जगज्जननि! मेरी मनोवाञ्छा पूरी करो। मेरी देवकीको मुझे दे दो। बस यही प्रार्थना है।"

* * * *

अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं, आजसे चार ही सौ वर्ष पूर्व क्षत्री-पुत्र, शस्त्र लेकर, इतनी छोटी बातोंके

लिए—जीव-बलिका प्रलोभन देकर—देवी-देवताओंके सन्मुख प्रतिज्ञा नहीं किया करते थे। उस समय उनकी प्रतिज्ञाएँ हुआ करती थीं, स्वदेशोद्धारके लिए—पर-दल-संहारके लिए और गो-ब्राह्मणके उपकारके लिए। पर आज ? मैं क्या कहूं ? पारथसिंह हीको देख लीजिए।

४

पारथसिंहके पिता गोरखपूर जिलेके अन्तर्गत देवनपूर कस्बेके साधारण ज़मींदार हैं। और, देवकीके पिता मोहनसिंह उनके मुख्तार-आम हैं।

*　　*　　*　　*

पारथके पिताने मोहनसिंहसे कहा—

"भाई मोहन, लड़केकी ऐसी ही इच्छा है, अतः मुझे विश्वास है तुम भी इस सम्बन्धको अस्वीकार न करोगे।"

मोह०—नहीं सरकार, हमारे धन्य भाग्य जो आप ऐसे राजाके पुत्रसे हमारी पुत्रीकी शादी हो।

पारथसिंहके पिताने अपनी सुफ़ेद मूंछोंपर हाथ फेरते-फेरते कहा—

"अच्छी बात है। अब जरा पारथको साथ लेकर गांवमें चले जाओ और जो भेड़ा सबसे तैयार हो उसे ले आओ। आगामी मंगलवारको माता भगवतीकी पूजा होगी। पारथने कोई मनौती मानी है। मेरी राय है कि उसी दिन तुम फलदान भी कर देना। एं ?"

मोहनने सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की। वे पारथको साथ लेकर गांवमें सर्व-श्रेष्ठ-बलि-पशुकी तलाशमें चले।

५

पारथसे किसीने बताया था कि सुक्खू गड़ेरियाके पास एक भेड़ा है जो गांव ऊपर है। सुक्खू ही देवनपूरका सर्वश्रेष्ठ भेड़ोंका व्यापारी भी है। अस्तु, मोहनसिंह और दो-चार प्यादोंके साथ पारथ, सुक्खूके घरपर पहुंचे।

सायं साढ़े पांचका समय था। सुक्खू अपनी झोप-ड़ीके सामने खाट बिछाकर बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा था। पारथसिंहके दलको देखते ही उसने हुक्केको एक

कोनेमें रखकर खाटका त्याग किया। निकट आनेपर उसने पारथ एवं मोहनको झुककर सलाम किया।

मोहनने कहा—

"करे सुखुआ, सुना है तेरे पास एक ऐसा भेड़ा है जो गांव भरसे बली और तैयार है। क्या यह बात सच है ?"

अत्यन्त नम्रतासे सुक्खू बोला—

"सब सरकार लोगोंका अकबाल है।"

पारथ—वह कहां है ?

सुक्खू—वह देखिये सामनेके पेड़से बंधा है। यह एक जोड़ा मैंने सबसे अधिक पसन्द किया है। इसमें एक नर है और दूसरी मादा। दोनोंमें खूब पटती है सरकार।

पारथने वृक्षकी ओर दृष्टि की। सचमुच भेड़ा जैसा लोग कहते थे वैसाही है। अहा, देवी इसकी बलि पातेही प्रसन्नवदना हो जायंगी। पारथ मनही मन फूलने लगे।

"सुक्खू, इस जानवरको मुझे दे दो।" पारथने कहा। साथही मोहनसिंहकी भी घोषणा हुई। कि—

"सरकारमें जरूरत है रे! इस भेड़ेको ड्योढ़ीपर पहुंचा दे।"

उक्त प्रस्तावपर सुक्खू कुछ दुःखी हुआ। वह उस मेषदम्पतीको बड़े लाड़से रखता था। उसने कहा—

"सरकार! किसी और से न काम चलेगा? इस भेड़े-पर आपके गुलाम चिथड़ुआ-(सुक्खूका पुत्र) का बड़ा प्रेम है।"

इसी समय कहींसे चिथड़ूजी भी आ गये। आपका रंग कोयलेसे भी उज्ज्वल और काजलसे भी बीस था। इस समय आपके हाथमें एक भूना हुआ प्याज सुशोभित था। आप उसकी गति बना रहे थे। पुत्रको देखकर सुक्खूने कहा—

"चिथड़ू! मालिक आये हैं, पैलगी करो।"

चिथड़ूने समझा कि अपरिचित लोग उसका प्याज लेना चाहते हैं। वाह! भला यह भी सम्भव है? उसने बिगड़ कर कहा—"हूं ऊं ऊं ऊं मैं नहीं दूंगा। मुझे मेली मां ने दिया है हूं ऊं ऊं ऊं।"

सुक्खू—अरे प्याज नहीं मांगते। सलाम कर।

'छलाम' ? अपनी आखें नचा कर चार वर्षके चिथड़ू सरदारने कहा। लोग हँस पड़े। क्यों ? इस हँसीने चिथड़ूको कुछ विरक्त कर दिया।

मोहनसिंहने कहा—"सुखुआ, यही तो तुम लोगों-की बुरी आदत है। जनमभरमें यदि जमीन्दार कुछ मांगता भी है तो बीस हीले-हवाले करते हो।"

सुक्खू—नहीं सरकार! मालिकके लिए जान हाजिर हैं। आप ले जाइये, बहुत होगा चिथड़ू रोवेगा, इसकी कोई चिन्ता नहीं।

पारथकी आज्ञासे एक प्यादा भेड़ेको वृक्षकी जड़से खोल कर ले चलनेको उसके पास गया। इधर चिथड़ू सरदार बिगड़े—

"हत! हत!! हमाला घोला मत छोल!"

प्यारसे पुत्रको रोकते हुए सुक्खूने कहा—

"तुम्हारा घोड़ा गाड़ी लाने जाता है। उसपर चढ़ोगे न ?"

प्रसन्न होकर चिथड़ूने कहा—'हां।'

भेड़ा वृक्ष-मूलसे खोल लिया गया। मोहनसिंहने

सुक्खूसे कह दिया कि कल कोठीपर आकर उसका मूल्य ले लेना। सब लोग चले।

पर यह क्या! भेड़ा तो आगे बढ़ता ही नहीं है। वह रह-रह कर अपनी जोड़ीकी ओर देख-देख कर चिल्ला रहा है। उधर भेड़की भी यही दशा है। अब?

सुक्खूने कहा—"सरकार, इन दोनोंमें बड़ा मेल है। लक्षणसे जान पड़ता है, भेड़ा अकेले न जायगा।"

"जायगा क्यों नहीं? मारकर ले चलो।"

मोहनसिंहने कहा। साथ ही भेड़ेकी पीठपर प्यादोंने दो डण्डे जमा दिये। शरीरको व्यथा होनेसे भेड़ा उठा। आठ-दस पग आगे भी बढ़ा। परन्तु फिर अपनी प्रियतमाकी कण्ठ-ध्वनि सुनकर बैठ गया। उसके नेत्रोंमें जल, मुखपर उदासी और हृदयमें शोक उमड़ता सा जान पड़ता था।

मनुष्य! तुम्हीं केवल प्रेम करना नहीं जानते—पशु भी जानते हैं। क्यों किसीकी जोड़ी तोड़ते हो? ऐसा न करो!

पर मनुष्य कब सुनता है। हर आठवें पगपर डण्डे

मार-मारकर पारथसिंहके साथियोंने मेड़ेको उसकी प्रिय-तमासे बहुत दूर कर दिया। फिर भी उसका करुणक्रन्दन रुका नहीं।

हाटमें आनेपर पारथका एक परिचित ब्राह्मण मिला। उसकी अवस्था साठ वर्षके पार थी। जीवकी दशापर, करुणागार ब्राह्मणको दया आ गई। उसने कहा—

"जय हो सरकार। छोड़ दीजिये—व्यर्थमें किसी जीवको क्यों कष्ट देते हैं।"

विप्रको प्रणाम करना और उसके प्रश्नोंका उत्तर देना दूर रहा अभिमानी क्षत्रियोंकी उसपर दृष्टि भी नहीं गई। कलियुग है न भैया! इस युगमें साधारणसे साधारण क्षत्रिय भी किसी ब्राह्मणसे यह नहीं कह सकता कि—

"सदा विप्र हम तुम सन हारे,
मारत हू पा परिय तुम्हारे।"

६

हजरते इन्सान! जब तुम्हें गोजरका विष उतारना भी नहीं आता, तब तुम सर्पकी बिलमें जबरदस्ती हाथ

क्यों घुसेड़ा करते हो ? मोह और प्रेममें पृथ्वी आकाशका अन्तर है। प्रेम, स्वदेशोद्धारकी पवित्र कामना है तो मोह साम्राज्यवाद है। प्रेम, भक्ति-पूर्ण उपवास है तो, मोह मर-भुक्खोंकी भूख है। प्रेम, एक लंगोटी लगानेवाला दुर्बलकाय गान्धी है तो, मोह अनन्त सुखवासना विभूषित लायडजार्ज है। प्रेम जुल्मी नहीं है वह तो यह घोषणा करता फिरता है कि—

"कीजिये और कोई जुल्म अगर वाजिब है,
लीजिये और मेरे लब पै दोआयें आईं।"

यदि प्रेमकी समस्या उपस्थित होनेपर तुम्हारे मनमें भी ऐसी बातें नहीं उठतीं तो हट जाओ ! इस पवित्र-पथको अपवित्र न करो !

'कूचये-इश्क है यह रहगुज़रे आम नहीं।'

* * * * *

दिग्गजसिंहको मोहनसिंहने कोरा उत्तर दे दिया—वह देवकीकी शादी पार्थसिंहसे ही करेंगे। देवकीका प्रेम भी दिग्गजपर नहीं। उसने (दिग्गजसिंहने) एक

दिन एकान्त अवसर पाकर देवकीसे प्रणय-भिक्षा मांगी भी थी पर, उसे विमुख लौटना पड़ा !

दिग्गजका क्रोध पारथसिंहपर बढ़ा। वह स्थान-स्थानपर उसकी निन्दा करने लगा। यह तो कहिये वह साधारण पुलीस जमादार था। कहीं नव्वाबी होती तो पारथके प्राण कदापि न बचते। अब भी यदि मौकेसे मिल जाय तो दिग्गजसिंह बिना किसी हिचकिचाहटके पारथके प्राण ले ले। बहुधा असफल प्रेमियोंकी ऐसी ही गति होती है।

तो क्या दिग्जसिंह पारथको नहीं क्षमा करेगा? लक्षण तो ऐसे ही हैं।

७

भेड़ेने पारथसिंहके यहां और भेड़ने सुक्खूके यहां—दो दिनोंतक कुछ खाया ही नहीं। दोके दोनों दिन रात अपने खूटोंपर अपने हृदयाधारके लिए बराबर चिल्लाते और बन्धनमुक्त होनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें विवश होकर

पारथके पिताने भेड़को भी अपने यहां मँगा लिया। आप-को विश्वास न होगा—दो दिनोंके बाद जब मेष-दम्पती एकत्रित हुए तब दोनों प्रायः घण्टे भरतक एक दूसरेके कण्ठपर कण्ठ रखकर आंसू बहाते रहे।

*   *   *   *

आज मंगलवार है। रात्रि आठ बजनेका समय है। पारथसिंहके घरपर बड़ी चहल-पहल है। आज देवीकी पूजा होगी। मोहनसिंह भी आज अन्तिम बार पारथके घरपर सकुटुम्ब निमन्त्रित होकर आये हैं क्योंकि विवाह हो जानेपर तो कुछ और ही संबंध स्थापित हो जायगा।

उसी देवालयमें एक कोनेमें पांच सात काली-काली बोतलें रखी हुई हैं। इनमें क्या है, मदिरा? हां—आज-कलके अनेक क्षत्रिय, मदिरापानसे परहेज नहीं करते। फिर भगवतीकी पूजाके समय तो 'सुरा' 'सुधा' का पर्याय हो जाती है!

उस ओर देखिए बलि-काष्ठके पास एक गँड़ासा और दो-तीन तलवारें रखी हुई हैं। यही शस्त्र क्षणभर बाद भेड़का रक्त-पान करेंगे!

भक्त लोग एकत्रित हो गये। पारथके पिता, पारथ, मोहनसिंह तथा और अनेक व्यक्ति इधर-उधर बैठ गये। कुल-पुरोहितने पूजन करना आरम्भ किया। पूजन करने वालेके आसनपर पारथसिंह ही थे।

अन्य कर्मोंकी समाप्ति हुई। अब पशुकी आवश्यकता है। बलिके पूर्व उसकी भी पूजा होती है। मेष-राजको लानेके लिए लोग गये। इस बार भी वह अकेले देवालयमें नहीं आया। उसके साथ उसकी प्रियतमा भेड़ भी लाई गई।

पर बलि तो केवल भेड़ेकी होगी। इधर भेड़ा अकेले बलि-बेदीके पास जाकर पूजा करानेपर राजी नहीं होता। वह रह-रह कर मारे जानेपर भी, अपनी प्रेयसीकी ओर देखता और उसके स्वरमें स्वर मिलाकर चिल्लाता था। मानों देवी भगवतीसे प्रार्थना कर रहा था कि तुम यह क्या लीला करती हो? देवता होकर प्रेमके पथमें कण्टक बिछाती हो?

अब भेड़ा बेदीके पास कैसे ले जाया जाय? सबकी बुद्धि हार गई। अन्तमें ब्राह्मणकी सलाह यह

हुई कि बेदीके पास दोनों ही लाये जांय। पूजा एक ही की होगी।

क्यों न ब्राह्मण देवता! तुम्हारे बिना ऐसा घृणित मन्त्र कौन देगा? तुम क्या कम पतित हो?

वैसा ही हुआ। दोनों वेदीके पास लाये गये। भेड़ेकी पूजा हुई। उसके मस्तक पर रोरी लगाई और गलेमें माला पहनाई गई। इसके बाद? वही क्रूरताका नाटक आरंभ हुआ। बलात् भेड़ेके पैर बांधे गये। वह भूतलपर लिटा दिया गया और उसकी गरदन काष्ठके ऊपर रख दी गयी! क्षत्रिय-कुमारने अपने हाथमें गँड़ासा लिया।

यह सब लीला देखकर दोनोंके दोनों पशु चिल्ला रहे थे, इस तरह चिल्ला रहे थे जैसे आदमी चिल्लाता है। पर, किसीने उनकी पुकार न सुनी! अब लोग भेड़को भेड़ेसे अलग ले जाने लगे, पर वह गई नहीं! वह भी अपने प्रियतमके पास बैठ कर चिल्लाने लगी। अन्तमें निश्चय हुआ कि भेड़की उपस्थितिमें ही भेड़ेकी हत्या की जाय।

पारथने गँड़ासा ऊपर उठाया—नीच पुरोहित न जाने क्या-क्या मन्त्र पढ़ने लगा, इधर मरणोन्मुख भेड़ा और दुःखिता भेड़ जगज्जननीको पुकारने लगे।

पारसका गँड़ासा चला—पर उससे दो हत्याएं हुईं। भेड़ेकी गर्दनपर प्रहार होनेके क्षणभर पूर्व भेड़ने भी अपनी गर्दन अपने प्रियतमके कण्ठसे सटा दी थी।

* * * *

ठीक उसी समय बाहरसे शोर सुनाई पड़ा—

"डाकू! डाकू!! बाप रे बाप! मार डाला! आओ—बचाओ!"

सब लोग घबराकर देवालयके बाहर चले आये। देखते क्या हैं कि बीस-पचीस सशस्त्र, बलिष्ट डाकू घरमें घुस आये हैं।

डाकुओंने आते ही लोगोंका पीटना आरम्भ किया। ऐसी स्थितिमें घरकी तलवारें पड़ी ही रह गईं—गँड़ासे और बर्छे ताकते ही रह गये—और पुरुष दुम फटकार कर, घरकी स्त्रियोंको असहायावस्थामें छोड़कर—न जाने कहाँ काफूर हो गये। पण्डित, मोहनसिंह, पारथ और

उनके पिता सभी अपनी-अपनी जान बचाकर किसी न किसी ओर छिप रहे। घरकी औरतें हाय! हाय चिल्लाने लगीं। डाकुओंने उन्हें तंग करना और उनसे आभूषण लेना आरम्भ कर दिया!

* * * *

जिस समय घरमें डाकुओंने उत्पात आरम्भ किया उस समय देवकी अपनी भावी सास—पारथकी माता—से बातें कर रही थी। डाकुओंका नाम सुनते ही वह कांप उठी। अब क्या होगा? दोनोंको उसी स्थानपर काठ मार गया।

इतनेमें मुंहपर काला कपड़ा डाले एक लम्बा चौड़ा आदमी उसी कमरेमें आ पहुंचा। उसने आते ही पारथ-की माताके मुंहमें कपड़ा ठूंस, आंखमें पट्टी बांध और हाथ पैर कसकर एक कोनेमें उसे डाल दिया। फिर, कमरेका द्वार बन्दकर देवकीको अपना परिचय दिया—वह दिग्गज सिंह था!!

८

डाकुओंके चले जानेके चार घण्टे बाद, पुलिस-दलके साथ जब रण-बांकुरे क्षत्रिय पारथसिंह और मोहनसिंह कोठीपर लौटे तब उन्हें उस कमरेकी धरनसे झूलती हुई देवकीकी लाश मिली। उसके पैरोंके नीचे पृथ्वीपर एक पत्र पड़ा था। उसपर लिखा था—"पारथसिंहके लिए।"

पारथने पत्र पढ़ा, वह देवकीका लिखा था। उसकी नक्कल यह है:—

"क्षत्रिय-कुल-कलंक!

तुम्हें सहस्र बार धिक्कार है। तुम तलवार और गँड़ासेका प्रयोग मूक पशुओंपर कर सकते हो—जिनसे कि तुम्हारी कोई भी हानि नहीं है और अपने शत्रुओंको देखकर शृगालोंकी तरह दुम दबाकर भाग जाते हो— जो कि तुम्हारी मां और बहिनोंको भी किसी लायक नहीं छोड़ते।

तुम्हारी इसी कादरताके कारण आज मैं संसारमें मुंह दिखाने योग्य नहीं रह गई। मेरा सर्वस्व—उसी दिग्गज-

के पातकी चरणोंद्वारा पददलित हो गया! अब तुम अपना कलंकित मुख लेकर अकेले माता बसुन्धराके हृदय-के भार बने रहो। तुम्हें यमराजके यहां भी स्थान नहीं है।

—देवकी।"

अछूत
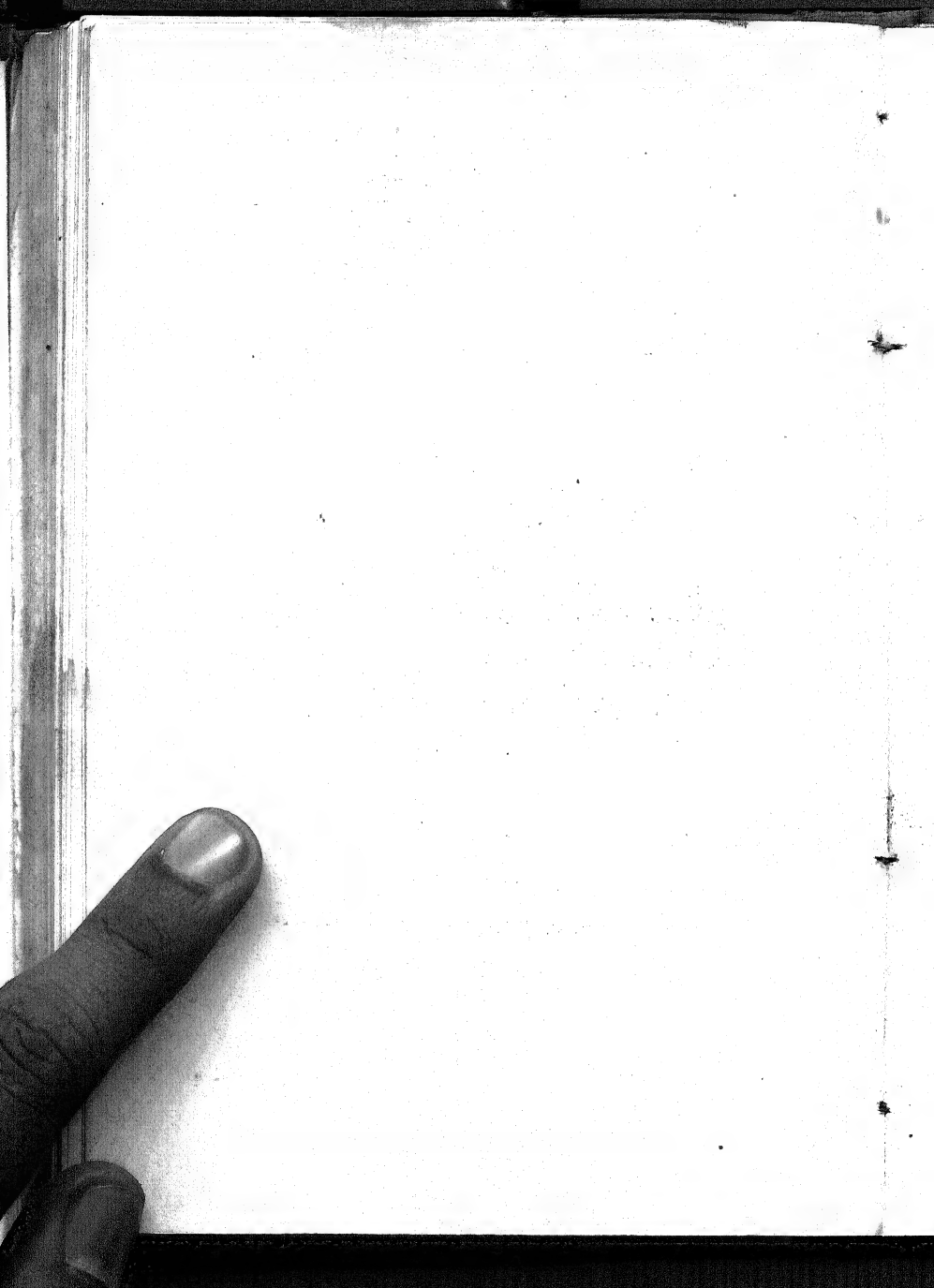
क

जेठका महीना और दोपहरका समय था। भगवान् नन्त-रश्मि अपने अगणित करोंमें प्रचण्ड-ताप लेकर घरघर बांट रहे थे। चण्ड-करके इस उग्र रूपको देखकर वापियां मारे डरके सूखी जा रही थीं, तड़ागोंकी धूल उड़ रही थी और सुकुमारी सरिताएं संकुचित हुई जा रही थीं।

ऐसे समयमें नवपुरके एक भवनकी दालानमें एक सात बर्षका बालक और पांच वर्षकी एक बालिका खेल

रहे थे। बालक पक्के रङ्गका था। बड़ी-बड़ी आंखें, उन्नत ललाट तथा कुञ्चित केशयुक्त वह बड़ा सुन्दर लगता था। बालिकामें भी सौन्दर्य्यका अभाव नहीं था। वह कञ्चन-कान्त-कलेवरा थी।

बालिका बोली—किसुन, कल जब मैं मांके साथ गंगा-स्नानको जा रही थी उस समय तुम और राधा वहां सड़क पर, कौन खेल खेल रहे थे?

किसुन—वह। वह तो विवाहका खेल था। बड़ा अच्छा है सुभद्रा! हमलोग रोज वही खेलते हैं।

सुभद्रा—विवाहका खेल?

किसुन—हां, उसमें दूल्हा होता है, दुल्हन होती है, घोड़ा रहता है—

सुभद्रा—और? फूल भी होते हैं क्या?

किसुन—अरे हां जी। फूल तो अवश्य होते हैं। उसीसे दूल्हेका मौर सजता है। तुमने देखा नहीं था? कल मेरे सिरपर कोई चीज थी?

सुभद्रा—हां थी तो। एक कागजमें कुछ फूल खोंस-कर तुमने उसे अपने मस्तक पर बांध रखा था। किसुन!

किसुन—क्या कहती हो ?

सुभद्रा—आज भी खेलो !

किसुन—हां हां चलो खेला जाय। पर सुभद्रा ! घोड़ा कहां है।

घोड़ेका अभाव जानकर बालकका मुख उदास हो गया। उसने समझ लिया कि बिना घोड़ाके खेल जमेगा नहीं। पर सुभद्रा नहीं उदास हुई। उसने हँसकर अपने साथीको ज़रासा धकेल दिया और कहने लगी—

"घोड़ा तो अभी परसों मेलेमेंसे बाबूजीने मेरे लिए ला दिया है। तुम यहीं रहो मैं उसे लिये आती हूं। किसुन ! मैं उसपर चढ़कर आऊंगी।"

किसुन—नहीं। ऐसा न करना। दूल्हेके घोड़ेपर कोई दूसरा नहीं चढ़ता।

सुभद्रा—पर मैं तो चढ़कर आऊंगी।

किसुन—तब जाओ ! खेल नहीं हो सकेगा। लो मैं जाता हूं।

किसुन दालानकी सीढ़ीपर उतर आया। बालिकाकी आंखोंमें बालकके इस निष्ठुर आचरणसे जल भर आया

वह जोरसे रो उठी। किसुनने सोचा कि सुभद्राकी मां उसके रोनेका शब्द सुनकर यदि यहां आ जायगी तो बिना मुझे मारे न छोड़ेगी। वह सुभद्राके पास लौट आया।

"तुम रोने क्यों लगीं ? सुभद्रा !" किसुनने बालिका-के आंसू पोंछते-पोंछते कहा।

सुभद्रा—तुम जाते क्यों हो ?

किसुन—तुम्हें खेलना ही नहीं है तो मैं यहां रहकर क्या करूंगा। जाता हूं राधाके साथ खेलूंगा। वह दूल्हेके घोड़ेपर थोड़े ही चढ़ती है।

सुभद्रा—तुम जाओ मत। मैं भी न चढूंगी।

किसुन— अच्छा ले आओ।

सुभद्रा हँसती हुई घोड़ा लाने गई। किसुन बरके मुकुटके लिए सामनेके उद्यानमेंसे पुष्प चुनने लगा।

ख

सुभद्राने घरके भीतर—कोठेपर—जाकर देखा कि उसका मिट्टीका घोड़ा जिसे वह किसी प्रकृति-रक्षित

अश्वसे अधिक चाहती थी—उससे तीन-चार हाथकी ऊँचाई पर, एक पटरी-रूपी पृथ्वीपर, निश्चल खड़ा है। बालिका उसे बुलाने लगी—"आओ! आओ!! आज तुमपर दूल्हा सवार होगा। तुम सजाए जाओगे। आओ! एक बार नहीं दस-बीस बार उसने उक्त प्रकारसे घोड़ेको पुकारा परन्तु वह टससे-मस न हुआ। उसके भाव, आकृति तथा खड़े होनेके ढंगमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। बालिका क्रुद्ध हो गई। उसने देखा पास ही में तीनचार हाथ लम्बी एक पतली सी छड़ी रखी हुई है। बस, उसे उठा लिया और घोड़ेको दिखाकर बोली—"उतर आओ नहीं तो इसी डण्डेसे मार दूंगी, उतरो! उतरो!!" पर, यह क्या अश्व-पतिके ऊपर सुभद्राके क्षीण-दण्डका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा!

"अच्छा तो लो मारती हूं" कह कर उसने अपनी पूर्ण शक्तिसे अश्वाधिपतिपर प्रहार किया। पर अभाग्यसे छड़ी छोटी ठहरी। उसकी पहुंच पटरीके निम्न भाग ही तक थी! अब सुभद्राका रोष और भी बढ़ गया। उसने घोड़ेको पटरीके नीचे गिरा देनेकी इच्छासे पटरीको

खोदना आरम्भ कर दिया। पटरी हिल गई—उसके ऊपरके निवासी मिट्टीके सम्राट्, रानी, भिश्ती, बन्दर, कुत्ता तथा घोड़ा सभी कांप उठे ! शायद सुभद्रा उन्हें भयभीत देखकर प्रसन्न हुई। उसने किञ्चित-गर्व-पूर्ण-मुद्रासे घोड़ेको सम्बोधन कर कहा—"आओ ! नहीं तो इसी-डण्डेसे अभी नोचे पटक दूंगी।" जान पड़ता था सुभद्रा-की बात उसके कानों तक न पहुंच सकी !

अबकी बार लगातार परिश्रम करके पांच-सात बार खोदकर सुभद्राने पटरी-पृथ्वीको उलट दिया ! देखते-देखते वह संसार सुभद्राके सिरपर आ गिरा !! बालिकाके मस्तकसे रक्तस्राव होने लगा, वह चिल्ला पड़ी !

पास हीकी कोठरीमें सुभद्राकी माँ सोई हुई थी। कन्याकी क्रन्दन-ध्वनि कर्ण-गोचर होते ही वह दौड़ी हुई घटनास्थलपर उपस्थित हुई। उसने देखा कि तमाम खिलौने यत्र-तत्र टूटे फूटे पड़े हैं। किसीका एक हाथ नहीं है तो किसीका पैर ही ग़ायब ! किसीका सिर टूट गया है तो किसीके पेटका ही पता नहीं। पटरीके नीचेकी छत खिलौनोंकी रण-भूमिसी जान पड़ती थी, तथा दीवारके

सहारे स्थित रक्तमयी सुभद्रा साक्षात् दण्डधारिणी रण-चण्डी !

जननीने झपटकर बालिकाको उठा लिया और लगी जोर-जोरसे पतिको पुकारने—"जरा यहाँ तो आओ ! यह देखो हमारी रानीका, हाय ! हाय !! सिर फूट गया ! कैसे गिरी बच्ची ! हीरामनी ! रानी बेटी ! बोल !"

जो सुभद्रा माताके अनेक प्रयत्नोंसे भी न चुप हुई थी वही पिताके एकही प्रयत्नसे शान्त हो गयी। वह प्रयत्न था एक रसगुल्ला। पुत्रीको चुप देखकर पिताने प्रश्न किया—

"बेटी, पटरी गिरी कैसे ?"

"मैं घोड़ा उतार रही थी।"

"पागल कहींकी, इस दोपहरके समय घोड़ेकी क्या आवश्यकता थी ?"

"घोड़ा उतार रही थी दूल्हाके वास्ते"

"किसका दूल्हा ?"

"हमारा"

सुभद्राकी बात सुनकर उसके पिता, माता- दोनोंही

हँस पड़े। मांने कहा—"बेटी, अभी तेरा दूल्हा कहाँ है। अच्छा तुझे दूल्हा चाहिए !"

सुभद्रा—है तो।

मां—कौन ?

सुभद्रा—वही किसुन। मां वह बड़ा अच्छा दूल्हा बनता है। कल तुमने देखा नहीं था वह राजाके साथ दूल्हा बना था।

माँ—अरे ! किसुन ? वह तो चमार है ! दुर पगली ! वही तेरा बर होगा ?

सुभद्राकी मांने अपने पतिकी ओर दृष्टि करके कहा—

"सुनते हो अपनी लक्ष्मीकी बातें ?"

सुभद्रा फिर बोली—मां हमारा घोड़ा बाहर पहुँचा दो, किसुन बैठा है। हम लोग दूल्हा-दूल्हन खेलेंगे। विवाह होगा।

सुभद्राके पिता समझ गये कि किसुन बाहर बैठा है। उसीकी प्रेरणासे बालिकाने घोड़ेको उतारनेकी चेष्टा करके अपना सिर फोड़ लिया है। उसके पुनः बाहर जानेका प्रस्ताव सुनकर वे बिगड़ उठे। बोले—

"खबरदार जो बाहर गई। पाजी कहींकी, चमारके लड़केके साथ खेलेगी। पटक दूँगा कि मर जायगी।"

बालिका पुनः रोने लगी। उसके मुखमेंसे रसगुल्ला-खण्ड भाग निकले। इधर सुभद्राके पिता किसुनको दण्ड देनेके विचारसे बाहर चले।

उस समय किसुन अपनी धुनमें मस्त होकर पुष्प बटोर रहा था। उसे यह ज्ञान नहीं था कि उसके इस कर्मसे सुभद्राके पिताके ठाकुरजी असन्तुष्ट हो रहे थे!

"सुभद्रा दुलहिन बनेगी और मैं दूल्हा। घोड़ेपर चढ़ूँगा! सिरपर फूल रक्खूंगा! आहा!!"

इतनी ही बातें किसुन हर बार बागीचेसे दालान तक आते जाते समय एक स्वरमें कहता था।

मुट्ठीभर फूल लाकर किसुन ज्योंही दालानकी गचपर रखने लगा त्योंही किसीके वज्र-सदृश पैर उसकी पीठपर पड़े, साथ ही साथ उसने सुना कि कोई कह रहा है—

"चमार ससुरे! तुझे और कहीं जगह नहीं थी जो यहाँ आया है? अब फिर कभी दिखाई पड़ा तो जान ले लूँगा।"

किसुनने देखा कि उक्त बातें सुभद्राके पिताके मुखसे निकल रही थीं। वह एक साँसमें भागा। चोट लगनेपर भी सुभद्राके घरके बाहर आये बिना उससे रोया नहीं गया!

ग

नवपुरमें पण्डित देवर्षिदत्त त्रिपाठीका बड़ा मान है। समूचा कस्बा उनका यजमान है। कहते हैं पहले वह बहुत ही निर्धन ब्राह्मण थे। उसी कस्बेकी यजमानीसे ही उनकी श्री-वृद्धि हुई। दरिद्र ब्राह्मण जमींदार हो गया। जो भूखों मरता था उसके द्वारपर भूखों मरनेवालोंकी भीड़ होने लगी!

देवर्षिदत्तका स्वभाव भी समयानुसार पलटता गया। निर्धन देवर्षि छोटे-बड़े सबकी यजमानी करता था। परन्तु धनिक—परिवर्तित—देवर्षिदत्त ऐसा नहीं करते। अब वह बड़े-बड़ोंके यहाँ भी बड़ी कोशिशसे जाते हैं। दरिद्रोंके यहाँ देवर्षि क्यों जाने लगे।

पहले जिस स्थानपर पण्डितजीकी एक अत्यन्त

क्षुद्र पर्ण-कुटीर थी वहीं पर अब उनका विशाल भवन अकड़कर खड़ा है ! वह अपने सन्मुख स्थित रामू चमार-की कुटी देखकर मन ही मन बड़े असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। 'हमारे भवनकी श्री मारी जाती है,' कह कर कई बार पण्डितजीने रामूको अपनी कुटी बेच देनेके लिए विवश करना चाहा पर, दरिद्र रामू अपने पूर्वजोंकी जन्मभूमि त्यागनेके लिए प्रस्तुत नहीं है। किसुन ही रामूका एक मात्र पुत्र है।

देवर्षिदत्तके परिवारमें उनकी स्त्री तथा एक कन्याको छोड़कर और कोई भी नहीं है। स्त्रीका नाम करुणादेवी तथा कन्याका सुभद्रा है।

ख

रामू अपनी झोपड़ीके सामने एक वृक्षके नीचे बैठ कर जूता सी रहा था। घोर ताप होनेपर भी जान पड़ता था। कि उसे अपने काममें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं दिखाई पड़ती थी। सदय श्रम-विन्दु शीघ्रतासे आ-आकर उसके हाथोंमें स्थित चर्म-खण्डको जल-सिक्त कर

रहे थे। मानों वे चर्मको नम्र करके दरिद्र रामूके काममें सहायता पहुंचा रहे थे। वह क्षण-क्षण पर चमड़ेको अपने मुखमें उतनी ही स्वतंत्रता से रख लेता था जितनी स्वतंत्रतासे हम किसी पुष्पको कभी-कभी रख लिया करते हैं!

रामूके सामने ही एक अधेड़ व्यक्ति बैठा हुआ चिलम पी रहा था। बीच-बीचमें उसके किसी प्रश्नका उत्तर देनेके लिए रामूको क्षण भरके लिए अपना काम रोक देना पड़ता था। चिलममें एक फूंक मारकर रामूके हाथमें देते हुए सामनेवाले व्यक्तिने कहाः—

चचा! तुम तो हमलोगोंसे बहुत बड़े हो। देश-दुनिया भी तुम्हारी खूब देखी हुई है। भला बताओ तो क्या सचमुच हमलोग अछूत हैं? हमने इस षिषयके अनेक प्रश्न अनेक विद्वान ब्राह्मणोंसे भी किये थे, पर उन्होंने—'हट' तैं चमार इस समस्याको क्या समझेगा?" कहकर सदा ही उत्तर न देनेका व्रत-सा कर लिया है! क्या यह ठीक है? हमने सुना है कि विलायत वालोंमें चमार (चर्म-कार) तो होते हैं, पर कोई अछूत नहीं होता। वहांका मेहतर भी केवल अपने व्यापारके समय

मेहतर समझा जाता है, नहीं तो सभी भाई हैं। तब फिर हमारे ही देशवालोंको अछूतका रोग क्यों लगा है? यह किस बातमें उन—विलायतवालों-से श्रेष्ठ हैं। वे ही हमारे राजा हैं, उन्हींकी बुद्धिसे धुआंगाड़ी, हवागाड़ी पैरगाड़ी चलती है। जब ऐसे चतुर भी अछूत-छूतका विवेक नहीं करते तब इन मोटे-मोटे पण्डितोंको क्या सूझी है?"

जबतक उक्त व्यक्ति अपना प्रश्न सुना रहा था तब-तक रामूने तीन चार फूंक मार लिए। फिर चिलमको उसके हाथोंमें अर्पण कर उत्तर देनेका उपक्रम सोचने लगा। वह बोला—

"भाई मेरे, आजकल हमारे पवित्र हिन्दूधर्ममें बहुत-सी पोल घुस गई है। लोग बात-बातमें 'गुड़ खाकर गुलगुलेसे परहेज़' करते हैं। चामके कुप्पेका घी बड़े प्रेमसे खाते हैं। पर चमारको छूकर उन्हें नहाना पड़ता है। बाजारसे मिठाई लेकर आते समय यदि किसी डोमसे छू जायँगे तो ऐसा मौन साधेंगे मानों कुछ हुआ ही नहीं! पर ऐसे उसकी वायु भी अपवित्र है। किसी सुन्दरी

श्वपच-बालाके चरणों पर दृष्टि डालनेमें कितने ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य-कुमार अपना सौभाग्य समझते हैं— परन्तु साधारणतः दिखानेके लिए उन्हें देखकर "दूर! दूर!" चिल्लाते हैं। भैया, ऐसे आदमियोंको मनुष्य समझना भी पाप है।

महात्माओंका कथन तोः—

"जात पात पूछै नहि कोई,
हरिको भजै सो हरिका होई।"

है! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टिमें जन्मसे कोई भी अछूत नहीं था, नहीं तो केवटको वे हृदयसे कदापि न लगाते और न भिल्लिनीके जूठे फलोंको ही खाते। रैदासजी भी हमारी ही बिरादरीके तो थे, पर भक्तोंमें कैसी उनकी प्रतिष्ठा है?

मेरी सम्मति तो यहाँ तक दृढ़ है कि हमें अछूत समझनेवालोंको एक दिन अवश्य अपनी करनी पर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। लोग कैसे मूर्ख हैं कि जबतक चमार हिन्दू रहता है तबतक तो वह अछूत है, पर प्रभु ईसाकी शरणोंमें जाते ही—बपतिसमा लेते ही—उसमें

पवित्रता आ जाती है। वह ढोंगियोंका देवादिदेव हो जाता है। धिक्कार है ऐसे विचारवानोंको !"

रामू अभी कुछ और कहनेवाला था पर किसुनको अपने पास रोते हुए आते देखकर वह चुप हो गया। रामूका लाल, उसके प्राण, उसका सर्वस्व रोता क्यों है ? उसने दौड़कर पुत्रको—हृदयसे लगा लिया और—"क्या हुआ ? क्यों रोते हो बेटा ?" इत्यादि प्रश्न करने लगा।

किञ्चित् स्थिर होकर किसुनने पितासे प्रश्न किया—"बाबू सुभद्रा चमार नहीं है ?"

रामू—सुभद्रा कौन ? पण्डित महाराजकी पुत्री ?

किसुन—हां ! बाबू, वह भी चमार है ?

रामू—चुप ! चुप !! नहीं तो जान न बचेगी। बेटा वह ब्राह्मण-कुमारी है। उसे चमार कहकर उसका अपमान न करो ! तुम रोते क्यों हो ?

किसुन—पण्डित बाबाने मुझे चमार कहकर एक लात लगायी है। कहा है, खबरदार, हमारी कन्याके साथ कभी मत खेलना। यह क्यों बाबूजी ! मैं तो जरूर उसके साथ खेलूंगा।

पुत्रकी बात सुनकर रामूके नेत्रोंमें आंसू आ गये। उसने कहा—

"बेटा! वह ब्राह्मण हैं, पूज्य हैं। तुम चमार हो, अछूत हो। तुम्हें उनके साथ कदापि न खेलना चाहिए!"

किसुन—तो मैं सुभद्राके साथ न खेल सकूंगा, बाबूजी?

रामू—कमसे-कम इस जन्ममें तो ऐसा नहीं हो सकेगा बेटा! उस जन्ममें यहां आते समय तुम परमात्मा-से प्रार्थना कर किसी ब्राह्मणके घरमें अथवा किसी अन्य द्विजातिके यहां जन्म लेना। उस अवस्थामें तुम हजार नीचता, अनन्त पाप करके भी एक चमारसे श्रेष्ठतर कहे जाओगे।

तीन वर्ष बाद।

* * * *

देवर्षिदत्तके यहाँ बड़ी धूमधाम है। चारों और सफाई, मरम्मत तथा निर्माण कार्य हो रहा है। किसी कोठरीमें

चावलके बोरे भरे जा रहे हैं तो कहीं पर आटा छाना जा रहा है। माजरा क्या है? ठीक, सुभद्राकी अवस्था आठ वर्षकी हो गई—उसके विवाहकी तैयारी होती होगी।

वह देखिये वहाँ पण्डितजी किससे झिड़क रहे हैं। हैं! वह तो रामू जान पड़ता है। चलिए देखें तो!

रामू—पण्डितजी महाराज! यह अन्याय है। मेरी क्षुद्र झोपड़ीसे आपकी कोई भी हानि नहीं है। यदि छोटे न हों तो बड़ोंके पदका अस्तित्व ही न रह जाय। आप मुझसे मेरी झोपड़ी छोड़नेका आग्रह न कीजिये।

देवर्षि—चुप रह। पाजी कहींका चला, है हमें ज्ञान सिखाने। तेरी झोपड़ीसे मेरी कोई हानि ही नहीं है? प्रातःकाल उठते ही चमारका मुंह देखना पड़ता है, सो तो है हो, घरके चारों ओर गन्दगी भरी रहती है। कहीं चामका टुकड़ा पड़ा रहता है तो कहीं हड्डीका। अभी उस दिन मेरे पूजनके समय कोई पक्षी एक चर्मखण्ड मेरे सिरपर गिराकर चला गया था। उसके लिए मुझे तीन बार स्नान, हवन तथा दान करना पड़ा था। वह न जाने किस जानवर का चाम था।

रामू—बाबू... ।

देवर्षि—सुन, अब मैं मान नहीं सकता । तुझे अपनी झोपड़ी हटानी ही पड़ेगी । आज ही हटा ले, परसों सुभद्राका विवाह है ।

रामू चमार था तो क्या उसमें आत्माभिमानकी मात्रा पर्याप्त थी । पण्डितजीकी बात सुनकर उसे क्रोध चढ़ आया । वह कहने लगा—

"महाराज ! आप दीनदयालु ब्राह्मण होकर यदि हमारा सर्वनाश करना चाहते हैं तो कर डालिये । पर मैं अपनी झोपड़ी, अपने पूर्वजोंकी स्मृति कदापि नहीं नष्ट करूंगा । आपहीके कारण मेरा एक मात्र पुत्र..."

पुत्रकी याद आते ही बुड्ढे रामूके नेत्रोंमें आँसू आ गये । क्षण भरके लिए उसका स्वर भंग हो गया । वह कुछ ठहर कर फिर बोला—

"मेरा एक मात्र पुत्र न जाने कहाँ चला गया । जिस दिन आपने उसे एक लात लगायी थी उसके तीसरे दिनसे किसुन अलक्षित है । आज तीन वर्ष बीत गये उसकी कोई खबर नहीं । मेरी स्त्री, किसुनकी पुत्रवत्सला जननी,

सन्तान शोकसे सन्तप्त होकर सुरलोक सिधार गयी। अब मैं ही इस पर्ण-विहीन कुटीका स्नेह-शून्य दीपक हूं। यदि इसे भी आपको बुझाना मंजूर हो तो मेरी झोपड़ीमें आग लगा दीजिये, पर हम भरसक आपके हाथोंमें अपने पूर्वजोंकी कीर्ति तथा अपनी आश्रय-दायिनीको कदापि न देंगे। आपमें बल है, हम दुर्बल हैं, चाहिये तो पीस डालिये। आप समुद्र हैं, हम एक साधारण नौका हैं, इच्छा हो तो हमें उदरस्थ कर लीजिये।"

रामूकी बात समाप्त होते न होते, देवर्षिदत्तके इशारेसे उनके पाँच पियादे उस पर टूट पड़े और धकिया-मुकिया कर घरके बाहर कर दिया!

सुभद्राके विवाहके एक दिन पूर्व, आधीरातके समय न जाने कैसे रामूकी झोपड़ीमें आग लग गई। शायद उस समय वह घोर निद्रामें सोया था, क्योंकि जब झोपड़ीने भस्मरूप धारण कर लिया था तब देवर्षिदत्तके नौकरोंने आकर देखा कि रामूका कहीं पता नहीं। हाँ कुछ हड्डियाँ ज़रूर उस भस्मका हृदय विदीर्ण करके उन नौकरोंकी ओर सूखी दृष्टिसे देख रही थीं।

जाँच करने के लिए जो पुलिस इन्सपेक्टर आया था उसकी खातिरदारीका कुल भार पण्डित देवर्षिदत्तने अपने ऊपर लिया था। जाते समय कुछ लोगोंने दारोगाकी जेबोंको बात-ग्रस्त शरीरके समान फूली हुई पाया।

अदालतमें पचास रुपयेका एक हैण्डनोट दिखाकर देवर्षिदत्तने रामूकी जन्मभूमिको नीलाम करा दिया और उनके नौकरने उसे खरीद लिया।

रामू! तुमने किस बूतेपर, धन-बल, जन-बल, शक्ति-बल, विद्या-बल तथा जाति-बलमें अपनेसे कहीं श्रेष्ठ पण्डित देवर्षिदत्तसे विरोध किया था? क्या तुम अपनेको नितान्त निर्बल चमार नहीं समझते थे?

४

बारह वर्ष बाद।

*   *   *   *

गत बारह वर्षोंमें देवर्षिदत्तकी सम्पत्ति शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ती गई। इस वृद्धिके लिए उन्होंने जो कुछ हो सका सब किया। कितनोंकी बेइज्जती करायी,

अनेकके घर जलाये तथा बहुतोंको कारागारमें पठाया। इस समय देवर्षिदत्तकी वार्षिक आय पचास सहस्रके ऊपरकी हो गई है। क्यों न हो, यदि अत्याचारी आनन्द न पाये, पापी प्रसन्न न रहे तो फिर कलिका महत्त्व ही क्या!

पर आज तो पण्डितजी कुछ उद्विग्न जान पड़ते हैं। दुःखकी छाया भी उनके मुख पर स्पष्ट है! क्यों? जरा सुनिये किससे क्या बातें कर रहे हैं।

देवर्षि०—भाई यही सब देखते-सुनते मेरे बाल पक गये पर ऐसा विचित्र दारोगा मैंने कभी नहीं देखा था। भला ऐसे भी कोई रुपये माँगता है? आज तुमसे वह क्या कहता था, गोविन्द!

गोविन्द—सरकार, वह तो बड़ा ही भयंकर व्यक्ति जान पड़ता है। उसने कहा है कि "कल इसी कस्बेमें एक खून हो गया है। उसमें तुम्हारे यहाँका एक नौकर भी शामिल था। यदि देवर्षिदत्त आज ही मेरे पास चार हजार रुपये न भेज देंगे तो मैं सभोंको फाँसूँगा।"

देवर्षि—चार हजार रुपये! केवल एक छोकरे

दारोगाकी भभकीमें आकर गिन देना कहाँकी बुद्धिमानी होगी। गोविन्द! मैंने भी ऐसे अनेक दारोगा देखे हैं। सीधेसे चाहें तो दस-बीस भले ही पान खानेको ले लें। पर रंग गाँठने पर देवर्षिदत्त अपने बापको भी कौड़ी नहीं दे सकता। जाओ, उससे साफ-साफ यही कह आओ!

देवर्षिदत्तने समझा था कि दारोगा इनकी बातोंमें आ जायगा। पर वह उपर्युक्त उत्तर पाकर अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ। उसने देवर्षिके सर्वनाशका निश्चय कर लिया।

जरा धमका कर पुलीसने पचासों गवाह खड़े कर लिये। पण्डित देवर्षिदत्तजी हत्याके अपराधमें गिरफ्तार होकर हवालातमें ठूंस दिये गये!

उनका मुकद्दमा सी० जैक्सन नामक किसी नवयुवक सिविलियनके हाथमें सौंपा गया। उस समय वह देवपुर जिलेका (जिसके अन्तर्गत नवपुर कस्बा था) ज्वायण्ट मैजिस्ट्रेट था।

कारागारकी एक कोठरीमें नत-मस्तक पण्डित देवर्षि-

दत्त बैठे हुए हैं। हत्याका अपराधी होनेके कारण उनके पैरोंमें बेड़ियां पड़ी हुई हैं। उनपर जेलवालोंकी कड़ी नज़र रहती है।

उनके मुकद्दमेकी लगातार दस पेशियां हो चुकी हैं। पुलीसकी ओरसे सैकड़ों गवाह गुजर चुके। सभोंने हत्याके बाद हाथमें तलवार लिये हुए पण्डित देवर्षिदत्त-को मृतक व्यक्तिके घरसे निकलते देखा था। पुलिसके डरके मारे देवर्षिदत्तकी ओरसे किसीने भी गवाही देना स्वीकार नहीं किया। रुपयेकी थैलियाँ बँधी ही रह गईं! बड़ासा मकान, रामूकी झोपड़ीका नूतन संस्करण, यह सुन्दर बंगला, सब चुप रह गये। देवर्षिदत्त महीनोंसे हवालातमें हैं पर उस क्रूरताकी मूर्तिके लिए, अत्याचारकी प्रतिमाके लिए—नवपुरमें किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं है। देवर्षिदत्त! और धाक जमाओगे? रुपये चाहिये? उसी कारागारमें से पुकारो! तुम्हारी थैलियां तुम्हें बचा लेंगी! पुकारो!!

देवर्षि सोचने लगे—"अनर्थ है। बिलकुल झूठा मुक-द्दमा सच्चा हुआ जा रहा है। कोई बुद्धि नहीं काम आ

रही है। क्या करूं ? कल फैसला सुनाया जायगा ! फैसला क्या होगा ? 'देवर्षिदत्तको मृत्युदण्ड !' कौन कहता है ?"

देवर्षिदत्त चौंककर खड़े हो गये, पर वहां कोई भी नहीं था। वे फिर बैठ गये। उनके मस्तिष्कने भी अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

"कोई भी मेरा सहायक न होगा। कैसे ? मैंने सुख ही किसे दिया है। रुपयेके लिए सबको सताया हैं और अब उसीके लिए मरूँगा भी। जैसे सर्प-प्रिय मदारी उसीसे मारा भी जाता है, वैसी ही मेरी भी गति होगी—हाय !"

"मेरे बाद मेरा अनन्त धन, इतनी बड़ी भूसम्पत्ति इतने भवन, बगीचे सब क्या होंगे ? मैंने इतने पापोंको किसके लिए सिरपर बाँधा है ?"

देवर्षिके नेत्र लग गये। उन्होंने स्वप्नमें देखा कि वे फांसीकी टिकठी पर खड़े हैं, उनके गलेमें फन्दा पड़ गया है। सामने मि० सी जैक्सन खड़े हैं। उनकी आज्ञा हुई, फन्दा खींचा जाने लगा। अरे ! यह देवर्षिदत्त क्या

देखते हैं, फन्दा खींचनेवाले जल्लाद नहीं थे। जो थे उनकी मूर्तियां रामू और उसकी स्त्रीसे बहुत कुछ मिलती थीं। रस्सी खींचते-खींचते रामूने देवर्षिदत्तकी ओर देखा—उसने हँसकर कुछ कहा भी, शायद कहा 'पण्डितजो ! क्षमा किजियेगा। मैंने चमार होकर आज, आपको छू लिया है।' देवर्षिदत्तको जान पड़ा कि उनका गला कसा जा रहा है। उनके प्राण निकला ही चाहते हैं। वे जोरसे 'अरे ! बापरे !' कहकर चिल्ला उठे। उसी समय उनकी आंखें खुल गईं। उन्होंने देखा कि कोठरीका दरवाजा खुला है और मि० सि० जैक्सन कई सिपाहियों तथा जेलरके साथ सामने खड़े हैं।

ॐ

नेत्र खुल जानेपर भी देवर्षिदत्तको स्वप्नकी बातोंको असत्य माननेका साहस नहीं हुआ। उन्होंने समझा कि वे दया करके कुछ क्षणके लिए टिकठी परसे उतार लिये गये हैं। वह दया किसकी थी ? देवर्षिने समझ लिया कि सी० जैक्सनको छोड़कर और किसीमें यह शक्ति नहीं है

जो मुझपर दया दिखाकर मेरा कुछ उपकार कर सके।

उस समय दुर्बल-हृदय देवर्षिदत्तमें यह भी सोचनेकी शक्ति नहीं थी कि फांसी देना ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेटका काम नहीं हैं। उसका अधिकार इतना बड़ा नहीं है! 'मुझे बचाइये! मुझे बचाइये!!' कहकर पण्डितजी विजातीय मि० सी० जैक्सनके चरणों पर गिर पड़े। मलेच्छ जैक्सनके काले जूतोंपर आर्य देवर्षिके हिमधवल केश इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे हाथीकी सूंड़पर चंवर!

"हैं! हैं!! यह क्या करते हैं।" कहकर साहब दो पग पीछे हट गये। ब्राह्मणके मस्तकने ईसाईके चरणोंका आश्रय न पाकर माता बसुन्धराके पदोंके सम्मुख धरना दे दिया!

साहब फिर बोले—"देवर्षिदत्तजी! आप घबरायं नहीं। मैं अन्याय कदापि न करूंगा। क्या आपसे और दारोगा हमीदसे कुछ शत्रुता है?

देवर्षि—दीनबन्धो! धर्मावतार! भक्तबत्सल प्रभु वह हमारा पुराना वैरी है। उसीने मेरे प्राणोंके नाशका बीड़ा उठाया है।

देवर्षिने अपने तथा दारोगाके वैमनस्यका पूर्ण इति-हास मि० सि० जैक्सनके सम्मुख कह सुनाया। जैक्सन साहब किञ्चित मुस्कुरा पड़े! उन्होंने कहा—"पण्डितजी मैंने प्राइवेट इनक्वायरी करके घटनाको भली प्रकारसे जांच लिया है।"

देवर्षि—सरकार! हमारी जान बचा दिजिये। मैं इन प्राणोंके लिए अपनी आधी सम्पत्ति दान दे सकता हूं। मेरी रक्षा कीजिए!

ब्रह्मणका मस्तक पुनः साहबके जूतोंको चूमने लगा!

साहब बोले—"पण्डितजी! आपने मुझे पहले कभी देखा था?"

देवर्षि—नहीं धर्मावतार, इस जन्ममें तो नहीं देखा पर आप मेरे पूर्वजन्मके पिता अवश्य हैं—मेरे प्राण बचा-इये।

साहब—आजसे बारह बरस पहले आपने रामू नामक किसी चमारको देखा था?

'रामू'? देवर्षिके प्राण सूख गये! उन्होंने दबे स्वरमें उत्तर दिया—"हां सरकार वह बेचारा मेरे घरके सामने ही

एक झोपड़ीमें रहता था। बड़ा अच्छा आदमी था। बेचारा घरमें आग लग जानेसे जल मरा।"

साहब—आग कैसे लगी थी यह न बतलाइयेगा? अच्छा जाने दीजिये। मैं उसी रामूका पुत्र 'किसुन' हूं। आप मुझे नहीं पहचानते पर मुझे आपकी लात अभीतक भूली नहीं है।

देवर्षिके काटो तो खून नहीं। उनकी आंखें पृथ्वीकी ओर लग गईं। शरीरमें कँपकँपी छूट गई। साहब फिर बोले—

"मिथ्यभिमानी ब्राह्मण! जिस किसुन पर तुमने पद-प्रहार किया था आज उसीके चरणोंको चूम रहे हो! आज वही 'चमार' तुम्हारा पूर्वजन्मका पिता है! धिक्!

"यदि मैं इस समय चाहूं तो तुम्हारी सब नीचताओं-का बदला ले सकता हूं, परन्तु मैं सच्चा चमार हूं—मिथ्याभिमानी ब्राह्मण नहीं। अन्याय करना मैं मनुष्यताके विरुद्ध समझता हूं। मैं जान गया हूं कि इस हत्यामें तुम निश्चय निर्दोष हो। अस्तु, तुम्हारे साथ न्याय होगा। निश्चिन्त रहो!

卐

ब्राह्मण देवर्षिदत्तकी रक्षा चमार किसुनकी कृपासे हो गई !

देवर्षिदत्त 'ब्राह्मण' था ?

किसुन 'चमार' (अछूत) था।

परीक्षा
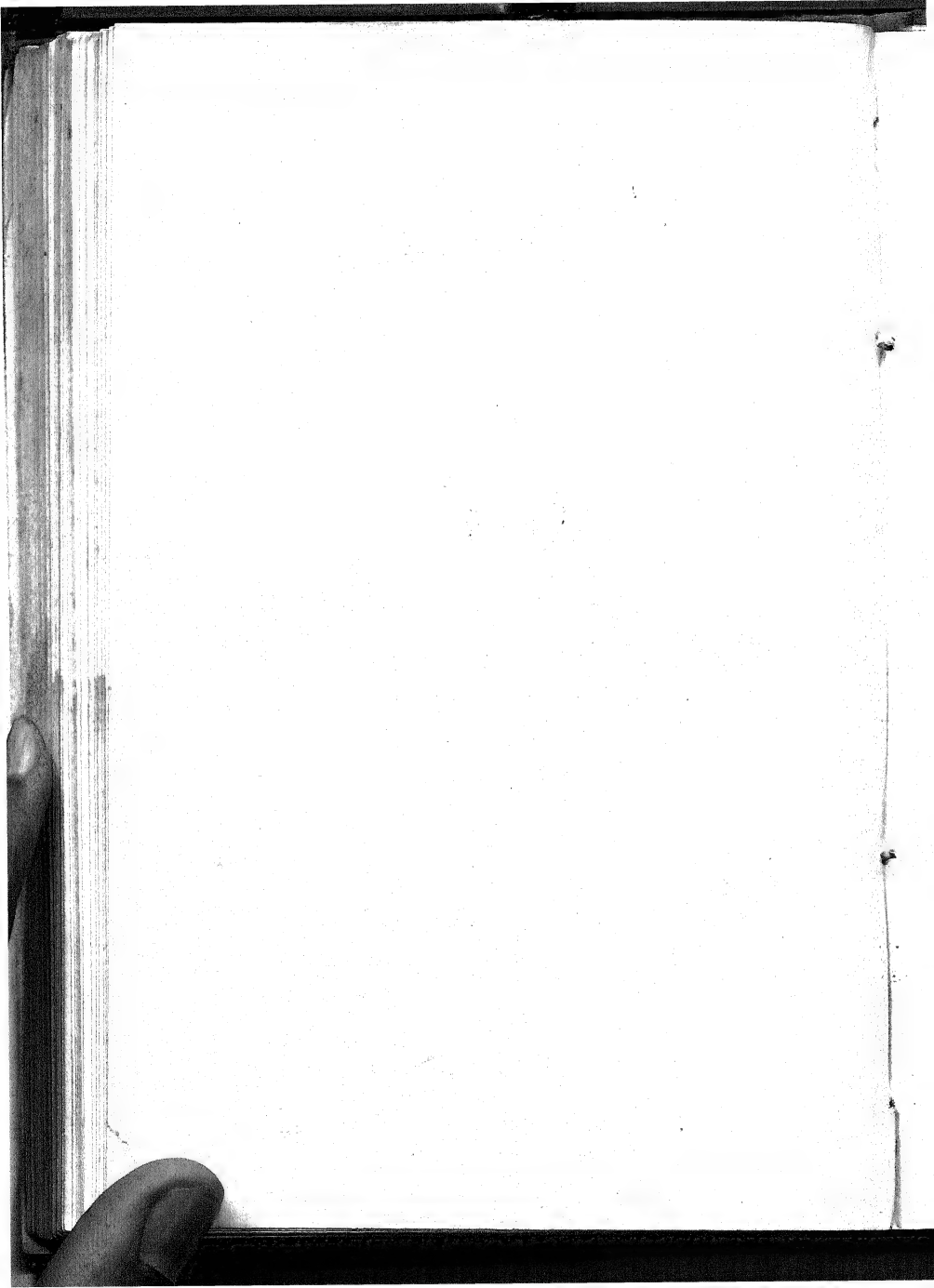
१

सभी स्कूलोंमें दस-बीस सज्जन लड़के होते हैं। मैं भी अपने स्कूलका एक 'सज्जन' छात्र था। सम्भव है 'आज' के अनेक पाठक 'सज्जन छात्र' की परिभाषा न जानते हों। अतः उसे यहां स्पष्ट किये देता हूं।—"स-ज्जन छात्र उस विद्यार्थीको कहते हैं जो वर्षमें मुश्किलसे दो महीने पढ़ता हो। ग्रप मारनेमें और टीचरोंको परेशान करनेमें एक हो। जिसे बेत मारनेकी इच्छा होते हुए भी 'हेडमास्टर' साहब बराबरा अपनी इच्छाका दमन करें।

जिसने अपने शहरके कमसे कम तीन चौथाई स्कूल देखे हों। जिसने तीसरी श्रेणीसे नवीं कक्षा तक पहुंचनेमें कमसे कम बारह वर्ष लगाये हों और 'इंट्रेंस' का पार पाना जिसके लिए उतना ही कठीन हो जितना पंगुका पहाड़ चढ़ना, 'लिबरल' का 'गरम' होना, हिन्दीके अनुवादकोंका मौलिक रचनाकी ओर झुकना या नौकरशाहीका सत्य बोलना!" 'जिमि सद्गुण सज्जन पहं आवा' के अनुसार उक्त गुण मेरी रग-रगमें सिमटे थे!

बहुत सम्भव है, आप मेरी बातोंको सत्य न समझें इसीलिए दो एक उदाहरण देता हूं। "एक दिनकी बात है, उस समय मैं छठी श्रेणीमें तीसरा वर्ष बिता रहा था। हिन्दीका घंटा था। मेरी 'सीट' सबसे आगेकी पंक्तिमें थी। और घंटोंमें तो मैं निश्चय ही सबसे पीछेकी पंक्तिमें हो जाता था पर, हिन्दीमें कोई डरकी बात न थी इसलिये पण्डितजीके सम्मुख ही विराजमान रहता। उस दिन पण्डितजीने सबसे व्याकरणकी पोथी खोलनेको कहा। सबके साथ मैं भी पुस्तक निकालकर बड़े ध्यानसे पढ़ने लगा। औरोंकी पुस्तकोंका नाम चाहे जो रहा हो

पर मेरे व्याकरणका नाम था 'वारांगना-रहस्य'! मेरी अत्यन्त तन्मयतापर पण्डितजीको कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने एकाएक (जो लड़का पढ़ता था उसे चुप करा) मुझसे आगे पढ़नेको कहा! चोरी पकड़ गई! मेरे हाथमें व्याकरण होता तब तो आगे पढ़ता? लाचार डेस्क खोल कर व्याकरण निकालने लगा। पण्डितजी मारे क्रोधके 'टोमाटो' की तरह लाल हो गये।! आज्ञा हुई—'स्टैंड-अप आन दि बेंच!' मैंने गिड़गिड़ानेका स्वांग रचते हुए कहा—'पण्डितजी क्षमा कीजिये। अब...।'पर, पण्डितजी कबके माननेवाले, गर्ज कर बोले—'खड़ा हो, जा! नालायक!!' संयोगसे उस दिन मेरी बेंचके और तीन छात्र अनुपस्थित थे और मैं बैठता था कोनेपर। ज्योंही खड़ा हुआ त्योंही 'सज्जनता' का ध्यान आया। बस धीरे धीरे, खसकता एक दम बेंचके किनारे आया! उधर उस (बेंच) का दूसरा सिरा 'भड़भूजे' की ढेंकली-की तरह उठने लगा। एक, दो, तीन! धड़ाम!! मैं, बेंच और डेस्कको उलटता पण्डित महाराजके टेबुलपर जा रहा और टेबुल बेचारा पण्डितजीकी छाती पर! मेरा,

टेबुलका और पण्डितजीका भार संभालना कुर्सीके लिए असम्भव था। लाचार, बेचारीने अपने दोनों पिछले पैर 'चर्रर' करके मोड़ लिये! क्लासमें ठहाका मच गया! उस दिनसे पण्डितजीने, हजार अपराध करने पर भी, मुझे कभी बेंचपर खड़े होनेको नहीं कहा!!"

एक दूसरा और सुन्दर उदाहरण लीजिये। "एक दिन शामको, अपने 'इंग्लिश-टीचर' को मैंने चौकमें देखा। उसके दूसरे दिन जब वे क्लासमें आये और पढ़ानेकी भूमिका बांधने लगे तो मैंने उनके पास जाकर बड़े अदबसे कहा—

'मास्टर साहब!'

'क्या है?'

'मास्टर साहब, एकबा......।'

'क्या बात है? कुछ कहो भी।'

'मास्टर साहब!—सर, आप नाराज़ हो जायँगे।'

'अरे कह भी।'

'नो सर! आप नाराज़...। मास्टर साहब!'

इस बार बिगड़कर मास्टर साहबने कहा—

'मास्टर साहब, मास्टर साहब ! क्या कहना है ? जल्दी बोलो !'

'अच्छा सर, कहिये, आप नाराज़ तो न होंगे !'

'जल्दी बोलो ! नहीं नाराज़ होऊंगा।"

'नहीं आप जरूर बिगड़ेंगे। मास्टर साहब...!'

'अबे कह ! सौ बार कहा, नहीं नाराज़ होऊंगा।'

मैंने कहा—'मास्टर साहब, कल मैंने आपको चौकमें देखा था !'

'बस, यही कहना था ?' कहकर मास्टर साहब दांत किटकिटाने लगे। इधर सहपाठियोंने अट्टाट्टहाससे स्कूलकी बुनियाद हिलाना आरम्भ कर दिया !"

२

हिन्दीके सुलेखक और सुकवि द्वन्द 'माधुरी'-सम्पादक चाहे नाराज़ ही क्यों न हो जायं पर, मैं इसे मुक्त हृदयसे स्वीकार करूंगा कि आठवीं श्रेणीमें मेरे मित्रोंकी लिस्टमें सबके ऊपर जिस छात्रका नाम था वह एक कवि था। यद्यपि मैं इस बातका हमेशा कायल रहा

हूं कि कवियोंकी जीवनीका आरम्भ स्कूलसे कदापि न होना चाहिये, असली कवि तो वे ही हो सकते हैं जो, बी० ए० या एम० ए० की 'दुम' पानेके बाद (और बहुत अच्छा हो यदि किसी सुन्दर पत्रिका या पत्रके सम्पादक-वर बन जानेके बाद) कविता लिखना आरम्भ करें। तथापि अपने सहपाठी कवि 'सरभंग' जीपर मेरी विशेष श्रद्धा थी। बात यह है कि जो लोग स्कूलोंमें ही कविता करने लग जाते हैं उन्हें आजकलकी पत्रिकाओंसे कहीं अधिक ख्याति मिलती है। यद्यपि उन्हें चौदह आने पृष्ठ पुरस्कार नहीं मिलता फिर भी स्कूल भरकी 'एक विशेष दृष्टि' जो पुरस्कार देती है उसकी कोई, 'चौदह आने पृष्ठ' वाला कवि कल्पना तक नहीं कर सकता। स्कूलके कवि-राजको देखकर बंगाली शिक्षक 'कोबीबर'! 'कोबीबर' !!' कहने लगते हैं। अंगरेजी शिक्षक, 'पोप' और 'टेनीसन' को याद करने लगते हैं। छोटी श्रेणीके छात्र समझते हैं कि वही 'वृहस्पति' या 'शुकदेव' के अवतार हैं। अपनेको हज़ार धन्नासेठके लड़के समझते हों पर, जब स्कूली 'कविराज' (किसी स्कूलकी सभामें) कविता पाठ आरम्भ करते हैं

तो उनकी ज़बानमें पानी आये विना नहीं रहता । वे सोचने लगते हैं—'हाय रे, मुझमें वह गुण न हुआ । नहीं तो... ।' स्कूली कविराज जिस समय स्कूलमें पधारते हैं उस समय दूसरे छात्र उन्हें विशेषभावसे अभिवादन करते हैं। और शिक्षक, उनके प्रणामको कुछ अधिक मुस्करा-हटके साथ स्वीकार करते हैं । ऐसी परिस्थितिमें 'एमेच्योर' कविराजोंसे 'प्रोफ़ेशनल' कविराजोंकी तुलना हो सकती है ? कदापि नहीं,—'कहाँ राजाभोज कहां भोजवा...!'

फिर 'सरभंग' जी तो आजकलके अनेक 'कविवरों' से सुन्दर लिखते थे। एक बारकी बात है, मैं अपनी गाड़ी पर स्कूल जा रहा था। रास्तेमें देखा कि 'सरभंग' जी अपने जूतोंको जोरसे सड़कपर रगड़ते और गुनगुनाते, स्कूलकी ओर बिलकुल उपेक्षासे चले जा रहे हैं। मैंने कविराजको गाड़ीमें बैठा लिया। थोड़ी ही दूर गया था कि एक गधा किसी खेतमें चरता दिखाई पड़ा। मैंने कहा—"सरभंगजी! भाई हम तुम्हें तब कवि समझें जब इस गधेपर कविता लिखो! और लिखो स्कूल पहुंचनेसे पूर्व, अभी।" 'सरभंग'

जी कब पीछे हटनेवाले थे। झट ट्रानसलेशनकी कापीपर ही निम्नलिखित कविता रच डली—

गधे जी आज बने सरकार !
सारा खेत बपौती इनकी—इनका ही अधिकार !
गधे जी आज बने सरकार !
दोनों कान खड़े लख इनके आता यही विचार,
मानों एक 'अशोक-लाट' है दूजो 'कुतुब मिनार'
गधे जी आज बने सरकार !
रह रह, रेंक रेंक, जो गाते अपना राग मलार,
मानों नौकरशाही करती निज-सिद्धांत प्रचार !
गधे जी आज बने सरकार !

यह कविता इतनी सुन्दर हुई कि मेरा प्रेम कविराजके लिए उमड़ पड़ा। पर, अफसोस इसका पुरस्कार जो उन्हें मिला वह चौदह आने पृष्ठसे बहुत अच्छा न था। हमारे ग्रामर-ट्रांसलेशनके अध्यापकका नाम था—'भुवनमोहन सरकार'! उस दिन अपने घंटेमें उन्होंने जो 'सरभंग' जीकी कापी देखी तो पेंसिलकी लिखाईसे बिगड़े। 'यह क्या लिखा है? इतना घिचपिच लिखते हो? पढ़ो! क्या है?' अब? बेचारे 'सरभंग' कैसे पढ़ते? बुरे फंसे। मास्टर

साहबने दो चार बार कहकर देख लिया। जब 'सरभंग' जी पढ़नेको राजी नहीं हुए तब एक दूसरे विद्यार्थीको आज्ञा मिली कि 'तुम पढ़ो!' उसे क्या मालूम? उसने जोरसे पढ़ ही तो दिया—

'गधेजी, आज बने सरकार!'

बापरे बाप! 'कौने अवसर का भयउ?' मास्टर साहब ऐसे बिगड़े कि बस।

'सरभंग' जीकी प्रचण्ड प्रतिभाका एक उदाहरण और। उन्होंने आजकलके स्कूलोंकी प्रशंसामें एक कविता लिखी थी 'ब्लैंक वर्स' में। देखिये--

'हे बीसवीं सदीके स्कूल।
गुण गरिमा अनूपका तेरी—
कैसे कोई कवि वर्णन करे? और
बिना वर्णन किये कोई रहे कैसे?
तेरा 'कोस'
'आफकोर्स' रखता है बड़ा 'फोर्स'।
छोटा सा भारतीय-बालकोंका मस्तिष्क,
क्या क्या चाटे? 'जियामेट्री' या
'अरिथमेटिक' का रूल आव थ्री'

या 'अलजबरा'के जबर्दस्त सवाल ?
अंग्रेजी ग्रामर तो मानो काल है ।
और, तोल भूगोलकी करें यम फ़क़त।
घंटे होते हैं पैंतालिस मिनटके,
बस, उतने हीमें 'सबजेक्टोंका पठन
करनेको,
होना चाहिये तनका, मनका और खोपड़ीका
सचमुच एक अद्वितीय संगठन !
तिसपर 'स्टएड अप आन दी बेंच ?'
'गेट आउट आव दी क्लास' और ब्लेक मार्क्स
करते सबकी सदा बोलती बन्द हैं।
पूछता जो—'मे आइ गो आउट सर !' तो
उत्तर हमेशा यही—'नो, टेक योर सीट।'
ऐसी परिस्थितिमें 'कमपीट'।
अंगरेजोंसे 'सरभंग' कैसे करें ?'

ख़ैर, भूमिका समाप्त हुई। मुझे 'परीक्षा'-का वर्णन करना है। जब परीक्षाके सिरपर सवार होनेमें एक महीनेकी कसर रह जाती थी तब हमें यह चिन्ता होती

कि अब क्या किया जाय ? यही हाल आठवीं श्रेणीमें भी था। एक दिन 'रिसेस' में, आयु, मस्तिष्क एवं वीर्य-वर्द्धक कचालू और दो दिनके बासी 'दही बड़े' खाते-खाते मेरी दृष्टि 'सरभंग जी' पर पड़ी और पड़ी नज़र एक देहाती सहपाठीपर जो उस छुट्टीके समय भी एक पेड़के नीचे बैठकर 'मार्स्‌डन' साहबका सिर चाट रहा था! मैंने 'सरभंग' जीको पास बुलाकर कहा—

"क्यों दीनबन्धु ! इम्तेहान कितनी दूर है ?"

"अधिक नहीं, सौ कोसोंका फ़ासला है। क्यों ?"

"अरे 'पास' हुआ जायगा या नहीं ? भाई मेरा तो इस आठवीं श्रेणीमें तीसरा वर्ष है। इस बार यदि लटका तो बस तुम्हारा साथ छूट जायगा। किसी दूसरे स्कूलमें जाना पड़ेगा।"

"अच्छा, खाना खत्म करो। चलो क्लासमें एक सभा की जाय और उसमें विचार किया जाय कि इस बार परीक्षाका कस प्रकार सामना किया जाय।"

* * * *

क्लासमें 'परीक्षोद्धारिणी' सभाका अधिवेशन आरम्भ

हुआ। 'परीक्षामें सफलता क्योंकर मिले' प्रश्नका उत्तर मेरे ग्रामीण मित्र रामखेलावनने इस प्रकार दिया—

'दशाश्वमेध घाटपर एक बाबाजी रहते हैं। वे ऐसा मन्त्र बताते हैं कि क्या मजाल कोई फेल हो। बस सवा रुपयेका खर्च है। हमें चाहिये कि उन्हींसे सहायता लें।'

रामखेलावनकी बात सुनकर गोविन्दकृष्ण आपटेने कहा—'नहीं, यह युक्ति व्यर्थ है। अजी, अब जो जो टीचर आवे सबसे पूछा जाय कि—सर, इम्पार्टेंट क्या है सो बताइये। और इसका जो जो उत्तर मिले सब खूब ध्यानसे नोट कर रट लिया जाय।'

मैंने कहा—'भाई मेरी राय तो यह है कि हम लोग इस बातका पता लगावें कि कौन शिक्षक किस विषयका परीक्षक होगा। फिर उन्हींको 'प्राइवेट ट्यूटर' रखा जाय। ऐसी हालतमें 'पेपर' का 'आउट' हो जाना बहुत सरल हो जायगा।'

राजीवलोचन शास्त्रीके सुपुत्रने कहा—'मैं दृढ़तासे कहता हूं कि अन्नपूर्णा-विश्वेश्वर सब कुछ कर सकते हैं, उन्हें सवा सवा सेर लड्डू 'मान' दिया जाय और

आरम्भ कर दिया जाय रोज उनके दर्शन करना। फिर क्या! विश्वनाथजी 'शून्य' पानेवालेको भी सौ नम्बर दिला सकते हैं।'

हनुमान गुप्तने कहा—'सुनिये, नकल करनेकी पूरी तैयारी की जाय। युक्ति मैं बताता हूं। मैंने सुना है, एक बी० ए० की परीक्षा देने वालेने अपनी सुफ़ैद कमीज़के बहुत बड़े बड़े 'कफ' बनवाये थे। उन्हीं (कफोंपर) वह आवश्यक बिषयोंको लिखकर परीक्षामें सम्मिलित होता। ऐसे ढंगसे, ऐसी खूबसूरतीसे उसने नकल की कि अन्य परीक्षार्थी दंग रह गये। वैसा ही हमें भी करना चाहिये।'

श्रेणीमें हमेशा फर्स्ट आनेवाले विद्यार्थी शिवमोहनने कहा—'यह सब व्यर्थ है। बकरेकी मां कबतक खैर मना सकती है? कागजकी नाव कितने दीनोंतक चलाओगे? मेरी सम्मति यह है कि पढ़ो! पढ़ना आगे चलकर भी काम देगा। नकल करते यदि पकड़े गये तो समझिये 'रस्टिकेशन, रक्खा है।'

इसपर लाल-पीला होकर हनुमानने कहा—'हां हां, पा गये हो जरासा दिमाग़, बमकोगे। हम लोग तुम्हारी

तरह रट्टू, तो हैं नहीं। हम हमेशा रंगसे रहते हैं, मौजसे पढ़ते हैं। फिर क्या ? किसी किल्लीसे ही तो पास होंगे।'

४

मैं अपने ही निश्चयपर दृढ़ रहा। पता लगानेसे ज्ञात हुआ कि 'अलजबरा-जियामेट्री' के परीक्षक हमारे भुवनमोहन सरकार महोदय होंगे। फिर क्या 'ग्रामर-ट्रान्स-लेशन' भी तो वे ही पढ़ाते हैं। उसका परीक्षक चाहे कोई भी हो, कमसे कम 'पेपर' छपनेके पूर्व उन्हें दिखलाया जरूर जायगा। बस, पांचों घीमें ; उन्हींको 'प्राइवेट ट्यूटर' बना लिया।

सरकार साहब स्कूलके माननीय अध्यापकोंमें थे। प्रधानाध्यापकजी भी उनकी इज्जत करते थे। अतएव उन्हें ट्यूटर बनाना किसी कलेक्टरको निमन्त्रण देना था। और अध्यापक सस्ते हो सकते थे पर भुवनमोहन बाबूका मूल्य अधिक था। अच्छा, मेरे बापको मेरे 'पास' होनेकी अधिक चिन्ता रहती थी। सालभर जब मैं खेलनेमें व्यस्त रहता तब तो वे कुछ न बोलते पर, जब

परीक्षामें 'फेल' हो जाता तो सत्कार करने लगते थे। अनेक बार अनेक टीचरोंके यहाँ दौड़-दौड़ाकर जा भी चुके थे। बात कहनेकी तो नहीं है पर जब चर्चा छिड़ी है तो कहता हूं। कई बार अनेक टीचरोंको उन्होंने रुपयोंकी सहायतासे मुझे नम्बर देनेमें उदार बनाया था। मेरी पढ़ाईका इतिहास ही दूसरोंकी सहायतासे बना है। अमीरके लड़के कहीं—'अपने सहायक आप' होते हैं?

पिताजीकी स्वीकृति मिल गई। भुवन बाबू मुझे 'हिसाब' सिखानेके लिए 'एक घण्टा' रोज़ आने लगे। उनकी तनखाह पैंतीस रुपये मासिक निश्चित हुई। एक महीना ही तो पढ़ना था—याने पैंतीस रुपयोंमें आठवीं श्रेणी पार करना था। भुवन बाबू हमें गणित, रेखागणित और—और उसका हिन्दी नाम नहीं याद आता 'अल-जबरा' पढ़ाते थे। आवश्यकतानुसार अंगरेजी भाषाके अंगोंका भी हम अध्ययन कर लेते। हाँ, कहना भूल गया था—मैंने 'सरभंग' जीको भी पढ़नेमें अपना साथी बना लिया था। वे भी शामको मेरे घर आ जाया करते थे। बिना उनके मेरा दिल ही नहीं लगता था।

यह ठीक है, क मैं गणितमें बहुत कमज़ोर था पर बेचारे 'सरभंग' की कमज़ोरी मुझसे कहीं अधिक थी। वह अङ्गरेजी, हिन्दी, भूगोल, इतिहास सबमें बहुत अच्छे थे पर, गणित उनके लिए काल था। चाहे लीलावतीका रचयिता ही क्यों न समझाने आता पर उनकी समझ गणितके नामसे दूर भागती थी। अतः, घरपर भी 'सरभंग' की पढ़ाई कुछ न होती। फिर भुवन बाबू उनके लिए अधिक माथापच्ची भी नहीं करना चाहते थे। क्योंकि रुपये तो मैं देता था। मेरे हाथों तो वे बिके थे। वह जमाना कोई और रहा होगा जब शिक्षक निर्धन विद्यार्थियोंपर अधिक दया रखते थे, कमज़ोरोंपर विशेष कृपा करते थे।

एक बात और थी जिसके कारण 'सरभंग' गणित कम समझ पाते थे। वे मुझे बहुत चाहते थे। इतना चाहते थे कि जब मेरी समझमें कोई सवाल आ जाता और वे कोरे ही रह जाते तो एक लम्बी साँस खींचकर कहते—'भाई, तुम्हीं पढ़ो। मैं फेल ही होऊँगा। जिसे तुम एक बार हीमें समझ जाते हो उसे मैं दस बारमें भी

नहीं समझ सकता। अतः गधे और घोड़ेका रेस ठीक नहीं।' इसपर मैं उन्हें समझाने लगता। सच मानियेगा, विद्वान् भुवन बाबूकी उपेक्षासे मेरी सहानुभूति 'सरभंग' को अधिक समझ दान देती थी।

एक तो मैं स्वयं पंडित दूसरे 'सरभंग' मेरे मित्र। 'प्राइवेट ट्यूटर' से कुछ अधिक उपकार न हो सका। भुवन बाबूको देखते ही हम किसी कहानीकी चर्चा चलाते। यदि उससे काम न चलता तो, उस समयकी ताजी घटना, जलियानवाला हत्याकाण्डको उठा लेते और उसमें भी सफलता न मिलती तो पढ़ने लगते। पर, कैसे ? मैं कोई सवाल भुवन बाबूके सम्मुख रख देता और कहता—"मास्टर साहब, जरा इसे समझा दीजिये।" जब वे समझाने लगते और लगते अपना ध्यान सवालकी ओर लगाने, तब हम लोग एक दूसरेकी ओर देखकर मुस्कराते या मास्टर साहबके सिरपर कलाईका 'चोंच' बनाकर ठहाके लगाते। ऐसे कहीं पढ़ाई होती है ?

५

परीक्षा प्रारम्भ हुई। पहले दिन 'इङ्गलिश टेक्स्ट' का पर्चा था। पचासों छात्र थोड़े-थोड़े अन्तरपर बैठे थे। बीचमें तीन-तीन 'गार्ड' गश्त लगा रहे थे। पर्चा बाँटते समयका दृश्य देखने लायक था। मेरे सम्मुख बैठे हुए शास्त्रीजीके सुपुत्रने देखा कि पर्चा बाँटा जा रहा है। फिर क्या था। आंख मूंदकर लगे ध्यान करने। चार पाँच बार नाकको इधरसे उधर घुमाया और कान उखाड़े। दो तीन बार उठे बैठे। दूरहीसे मालूम हो रहा था कि वे काँप रहे हैं। उधर हनुमान गुप्तके हाथमें पर्चा आया। कायदा है, पर्चा लेते समय छात्रको खड़ा होना पड़ता है। अतः हनुमानने भी खड़े होकर सादर पर्चा लिया। मगर लेते ही आंख बन्द कर ली, तीन चार बार उसे मस्तकसे लगाया, चूमा। फिर कुछ मन्त्र जपकर प्रायः पन्द्रह मिनट समय व्यतीत हो जानेपर उसे देखा।— रामखेलावनकी हालत देखने लायक थी। उसने पर्चा लाकर मेजपर रख दिया और लगा माला जपने। उसकी

बहुत दिनोंसे यही आदत थी। पाँच माला फेर लेनेके बाद—प्रायः आधा समय बीत जानेपर—पर्चेके प्रश्नोंकी ओर उसका ध्यान जाता।

*　　*　　*　　*

इंग्लिश, ग्रामर और ट्रान्सलेशनके बाद भयंकर गणितकी बारी आई। उस दिन विद्यार्थियोंमें अधिक आन्दोलन था। कहीं किसीने कहा—"मुझे ठीक मालूम है यह 'सवाल' आया है।" बस सब उसीपर सर मारने लगते। इस प्रकार हमने न जाने कितने सवाल दुहरा डाले। कितने जवाब कण्ठ कर लिये। पर, 'सरभंग' एकदम निश्चेष्ट रहे। उन्हें निश्चय हो गया था कि गणितमें उद्धार होना असम्भव है।

पर्चा बँटा। पहले पर्चेवाला अभिनय इस बार जोरोंसे दुहराया गया। पर, आज विचित्र दशा थी। अधिकतर छात्र मुग्ध होकर पर्चेकी ओर केवल देख रहे थे। बड़े कड़े सवाल थे। मेरी भी अक्ल दंग रह गई। बड़ी मुश्किलोंसे एक सवाल लगाया। उसे दुहरा रहा था कि भुवन बाबू सामने दिखाई पड़े। उस दिन वे भी

गार्ड थे। उन्होंने दूरहीसे मेरे सवालको देखा। शायद वह अशुद्ध था तभी तो मेरे पास आकर उन्होंने कहा 'इसे एक बार और भी दुहरा जाओ।' अरे, ठीक कहा था, सचमुच सवाल गलत लगाया था।

भुवन बाबू टहलते-टहलते 'सरभंग' के पास पहुंचे। देखा, वे चुपचाप बैठे थे। उन्होंने पूछा—

"कविता लिख रहे हो क्या सरभंग ?"

"जी हाँ।"

"क्या लिखा है, जरा सुनाओ।"

जोरसे 'सरभंगने' पढ़ा—

गणितमें मुझको नहीं आनन्द है,
क्या बताऊँ भाग्य मेरा मन्द है।
यदि यहां भी हो नियम योरोप सा, (तो)
जान लूं यह हो गया है लोप सा।
सीसपर मेरे यही जंजाल है,
औ परीक्षामें हमारा काल है।

६

इतिहासकी परीक्षाके दिन एक प्रश्न आया।—

'अकबरके विषयमें तुम क्या जानते हो ? विस्तृत उत्तर लिखो ।'

उस दिन हमारे ग्रामीण सहपाठी बाबू रामखेलावन सिंहने गिनकर पाँच कापियाँ रंगी थीं। जब 'गार्ड' महोदयने उनकी कापी छीन ली तभी उन्होंने लिखना बन्द किया। 'हाल' के बाहर जाते ही लगे उछलने। "खूब लिखा है। पूरे नम्बर मिलेंगे। परीक्षक भी लोहा मान लेगा।" पन्द्रह-बीस छात्रोंने उन्हें घेर लिया और लगे पूछने—"आखिर कुछ बताओ भाई क्या लिखा है ?" उन्होंने उत्तर दिया—"अकबर वाले प्रश्नके तीस नम्बर तो पूरे लूंगा।"

मैंने कहा—"क्या उत्तर दिया है ?"

राम—क्या क्या, साल भर तक घास थोड़े ही छीली है, भाड़ थोड़े ही झोंकी है। लिखा है—"अकबर हुमायूंका बाप था, जो पानीपतमें सदाशिवराव भाऊसे लड़ा था। अकबरके बड़े भाई 'शाहजहाँ' ने कई वर्षों तक राणा प्रताप और उनके पुत्र शिवाजीसे युद्ध किया। एक बार राणा प्रताप शाहजहाँकी चालमें फंस कर उसके बन्दी

भी हो गये थे जब उनके एक विश्वास पात्र नौकरने उन्हें मिठाईकी टोकरीमें बैठा कर कारागारके बाहर निकाला था।"

यह उत्तर ? मारे हँसीके हमारा पेट फूलने लगा। पर, रामखेलावनने हमारे हँसनेको अपनी प्रतिभाकी प्रशंसा समझ कर गर्वसे कहना आरम्भ किया—

"और सुनो ! अकबर बड़ा अत्याचारी शासक था। हिन्दुओंसे सख्त नफ़रत करता और मुसलमानोंकी तरफदारी करता था। अकबर हीके शासन-कालमें 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनी' को भारतमें व्यापार करनेका आज्ञापत्र मिला। एक दिन अकबरके दरबारमें दो आदमी आये, एक वीरबल और दूसरा टोडरमल। दोनों सगे भाई थे। वीरबल खेतकी पैमाइश खूब करता था और टोडरमल मजाक करनेमें पण्डित था।"

मैंने रामखेलावनको चुप कराते हुए कहा—

"बस करो भाई। इस बार तुम्हारा 'फर्स्ट डिविजन' स्योर है।"

७

"जिस दिन 'रिज़ल्ट आउट' (फलप्रकट) होनेको था उस दिन तेज़ छात्रोंके मुखपर प्रसन्नता, साधारण छात्रोंके वदनपर गम्भीरतामयी उत्सुकता और कमजोरोंके चेहरोंपर कालिमाका अधिकार था। स्कूलके बड़े 'हाल'-में सब छात्र एकत्र हुए। प्रधानजी पधारे और लगे फल सुनाने। फल सुनानेके समय केवल 'उत्तीर्ण' छात्रोंके ही नाम सुनाये जाते हैं। जब प्रथम और द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हमारे सहपाठियोंके नाम सुनाये जा चुके तब हम घबराये! क्या इस साल भी फेल! पर ईश्वरकी दया हुई मैं और सरभंग 'प्रोमोटेड' कर दिये गये थे।

"हालके बाहर आकर देखा रामखेलावन, हनुमान और शास्त्रीजीके विश्वनाथ-भक्त सुपुत्र एक स्वरमें चिल्ला कर गधोंको मात कर रहे थे! क्योंकि उनका नाम नहीं सुनाया गया था!

घूंघटको पट खोल री....;

१

"गांवके सब लोग एकत्र हो गये भाई ?"

"प्रायः एकत्र ही हैं, केवल रामानन्द चौधरीके घर और पुरेके लोग अभी आनेको बाकी हैं। मगर, वह देखिये स्वामीजी, वह लोग भी आ रहे हैं। महाराज, आज ऐसी कौन-सी जरूरी ज्ञान या विवेककी कहानी सुनानी है जो आपने प्रत्येक समझदार पुरुष और स्त्रीको यहां बुलाया है ?"

इतनेमें रामानन्द चौधरी और उनके पुरेका दल,

बट-वृक्षके नीचे बैठे साधुके सन्निकट जाकर, उन्हें श्रद्धा-से प्रणामकर, एक कोनेमें, साधुकी ओर ध्यान और कान लगाकर बैठ गया।

ग्रामीण स्त्रियां एक ओर अपनी फटी और गन्दी और अज्ञानावस्थामें बैठी थीं, पुरुष दूसरी ओर, और वह साधु—वह प्रायः दिगम्बर—वृक्षके चरणोंके पास उसकी एक प्रौढ़ा मूलाङ्गुलिपर बिना किसी आसनके ही बैठा गम्भीर भावसे कुछ विचार कर रहा था। सबकी आंखें मानों उसीके मुखपर किसी भावके दर्शन पाने या किसी शब्दके सुन पानेकी लालसासे मंडला रहीं थीं।

मगर, वे काले-कलूटे, कमरमें एकाध चीथड़ा लपेटे या अलिफ-नंगे, देहाती बच्चे उस बट-वृक्षके नीचे दुनिया-से दूरही रहकर अपना मनोरञ्जन कर रहे थे। शायद उन्हें उस साधु और उसके महत्वका ज्ञान नहीं था। तभी तो वे मूर्ख उस बटके बिवेकमय वातावरणसे परे रहकर साधुके अमूल्य सहवासका सुअवसर खो रहे थे। कभी किलकिलाकर खट्टे फलोंसे लदी हुई इमलीके गुच्छोंपर ढेलोंसे निशाने लगाते और उसके फलको रस ले-लेकर

चाबते थे आर कभी चारों और हो-हो ही-ही कर, सरपट मारकर, उस चम्पक-वरणी गोधूलिको मुखरित करते थे।

"अरे गदेलो"! गांवके किसी सतर्क बूढ़ेने उनको डाटा और ललकारा—"इधर आकर, यहां, तुम सब क्यों नहीं बैठते ? इन पापियोंका मन जितना इस बन्दरपनमें लगता है उतना अच्छी बातोंको जानने-सुननेमें न जाने क्यों नहीं लगता ? चलो जल्दी; बैठो आकर यहां बाबा-जीके सामने। चुपचाप बैठ भर जाओ ! नहीं तो, उठूंगा तो तुममेंसे एक-एक की मूड़ी पकड़कर मरोड़ डालूंगा।"

बच्चे एक बार तो ठिठके; क्योंकि बूढ़ेकी आवाज़ गड़ग-ड़ाती हुई थी। ऐसी गड़गड़ाती हुई जिसकी रूक्षता बाल-सुलभ श्रवणोंके लिए असहनीय-सी थी। मगर अँहँ ! क्षण भरहीमें उन्हें अपने बलका ज्ञान हो गया। वे बट-वृक्षसे दूर जो थे। यदि बूढ़ा उन्हे खदेड़ता तो वह जरूर ही भागकर बच जाते। भला वह भयानक गड़गड़ाने वाला बृद्ध प्राणी उन्हें पकड़ पाता ? कदापि नहीं। शायद इसी अनु-मानपर खड़े होकर उनमेंसे एक बिलकुल नंगे और शरीर लड़केने मुंह मटका कर कमर हिलाकर नाचकर—बूढ़ेको,

साधुको और सारी सभाको अपना अंगूठा—ठेंगा—दिखा दिया! उसने अपनी मौजमें कोई ग्रामीण गान भी ललकार दिया जिसका भावार्थ है—

"रहा लड़कपन रही जवानी
तब बुढ़ऊने की शैतानी
गया लड़कपन, गई जवानी
अब बुढ़ऊ बन बैठे ज्ञानी...
लू लू लू लू लू लू!"

लड़कोंके इस अज्ञानपर बटवृक्षके नीचे ज्ञानवार्त्ता सुननेके लिए बैठे उनके अभिभाकोंको क्रोध आ गया। उन मेंसे कुछेक तो झपटे भी उन पाजियोंको दुष्टताका पुरस्कार देनेके लिए। मगर साधुने उन्हें बाधा दी—

"सुनो भी, ठहरो भी," उसने सदय गम्भीरतासे समझाना आरम्भ किया—"उन्हें खेलने क्यों नहीं देते, चिल्लाने क्यों नहीं देते और क्यों नहीं देते धूम-चौकड़ी मचाने? वे नहीं चाहते तुम्हारा ज्ञान—मैं जानता हूं; और तुम्हारा ज्ञान अभी उनके लिए जरूरी नहीं है—यह भी मैं जानता हूं। उन्हें मेरे पास क्यों बुलाते हो? भला मैं

उन पवित्रों और सुकुमारोंको क्या सुनाऊंगा ? वे तो स्वयं मेरे गुरु हैं, बालगोपाल हैं हमारी-तुम्हारी इन क्षुद्र वासनाओं और उनकी अच्छाई-बुराईसे परे हैं। उन्हें न सानो, अभीसे, अपनी इस ज्ञानमायामें। उन्हें अभी कोरा कागजही रहने दो ; उनपर अपने विवेक या अविवेककी रेखा बरबस मत खींचो।"

बट-वृक्षके नीचे बैठे देहाती एकबार पुनः उस साधुकी ओर कौतूहलभरी आंखोंसे ताकने लगे। साधु एक बार पुनः गम्भीर हो उठा। और—और वे अज्ञानी 'गदेले' एक बार पुनः संसारके उस वृक्षके फलोंपर घात लगाने और ललचाने लगे, जिसे यहाँके ज्ञानी लोग 'खट्टा' और 'घातक' मानकर त्याज्य-त्याज्य पुकारते हैं।

२

"भाइयो और माताओ !" साधुने लोगोंकी ओर दृष्टि कर कहा—"तुम्हारे गांवका अन्न खाते, जल पीते और गांवके सहृदय द्वारपाल—इस महान बटकी छातीके नीचे सोते आज मुझे तीसरा दिन है। बस अब मैं इस

गांवसे आगे जाऊंगा। अब आत्मारामको यहां रुकनेकी आज्ञा नहीं।"

"क्यों महाराज," एक भोले देहातीने, हाथ जोड़ कर, सरल भावसे निवेदन किया—"हमसे ऐसी कौन-सी खता बन पड़ी है जो आप इतना जल्द अपने आशीर्वादके चरणोंको यहांसे परे ले जानेके लिए तैयार हो गये!" कहां आते हैं आप ऐसे लोग हमारी अधम आंखोंके आगे। अभी हमारे भाग्योंको कुछ दिन और धन्य हो लेने दीजिये। जल्दी क्या है?"

"अब कहीं आप जावें ही क्यों? स्वामीजी", गांवकी किसी प्रतिष्ठित बुढ़ियाने कहा—"यहीं, इसी बटके नीचे आपके लिये हम कुटिया संवारे देती हैं। आप यह गांव न छोड़ें। हमें हमेशा, हमारी आंखोंके सामने बैठ कर आशीर्वाद दिया करें।"

"नहीं मां," साधुने सजल निवेदन किया—"नहीं मां, गुरुकी आज्ञा नहीं है कि, मैं कहीं पर तीन दिनसे अधिक ठहरूं। गुरुकी आज्ञा नहीं है कि, मैं कुटी बनाऊं या जीवनका कोई सामान जोड़ूं।"

"क्यों महाराज," चौधरी रामानन्दने भी प्रश्नोंकी मालामें एक मनका पिरोया—"आपके गुरु भगवानने आपको ऐसी आज्ञा क्यों दी? जरा इस आज्ञाका भेद भी हमको समझाइये बाबाजी। हम मूरख प्राणी साधुओं-की बातोंके रहस्यको, बिना मझेमें समझाये, नहीं समझ पाते।"

"गुरु भगवानकी आज्ञाका रहस्य समझाने हीके लिए तो आज इस समय मैंने तुम लोगोंको यहां बुलाया है। तीन दिनसे अधिक कहीं न ठहरनेके साथ-साथ उन महात्माकी यह आज्ञा भी है कि, मैं लोगोंको वह कारण भी बताऊं जिस लिए उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। बात यों है। आजसे कोई सात बरस पहले मैं प्रयागके उत्तर दीनानाथपुर गांवका एक प्रतिष्ठित निवासी था। तब मेरा नाम था रामगोपाल।"

"अच्छा महाराज," एक बूढ़ीने पूछा—"जब आप हमारी तरह गृहस्थ थे, तब आपकी स्त्री भी थी? बाल-बच्चे भी थे? जरूर ही रहे होंगे।"

"बाल-बच्चे तो नहीं थे मां," साधुने उत्तर दिया—"पर

मेरी पत्नी अवश्य थी। वही तो मेरे साधु होनेका मुख्य कारण हुई। उसीके कारण मेरे गुरु भगवानको जल-समाधि भी लेनी पड़ी।"

"क्यों बाबा ?" एक देहातीने आश्चर्य प्रकट किया—"ऐसा क्या संयोग आ बना कि, आपकी घरनीके कारण आप ऐसे ज्ञानी-ध्यानीके गुरु भगवानको जल-समाधि लेनी पड़ी ?"

"वही तो बता रहा हूं," उत्तर मिला—"बात यों है कि, मेरी महारानी बड़ी रूपवती थी और मेरे गुरू महाराज थे बड़े तेजस्वी। विधिके विधानसे, प्रथम साक्षातमें ही मेरी पत्नी गुरू देवपर मोह गयी। साथ ही, गुरू भगवानकी तपस्या भी, उस हाड़-चामके आकर्षणमें पड़ अपनेको खो बैठी। मेरे अन्तःकरणके मुक्तिदाता मेरी अर्द्धाङ्गिनीपर रीझ गये !"

"बाबा रे !" ग्रामीणा वृद्धाने आश्चर्य प्रकट किया—"घोर कलियुग है, स्वामीजी। नहीं तो भला किसीके गुरु ऐसे देवता उसकी घरनीपर मोह सकते ! राम, राम !! पहले जमानेमें ऐसी बातोंका कहना-सुनना भी पाप

समझा जाता था, फिर ऐसी घटना घटनेकी कल्पना भी कौन करता। वह तो गुरू नहीं था, ठग था, महात्मा और त्यागी नहीं था, कुटिल और कामी था। छिः! उसीके शापसे तुम्हें बैराग लेना पड़ा है बाबा?"

"नहीं मां, नहीं मां!" कानपर हाथ रखते हुए साधुने गुरू-निन्दाका सात्विक विरोध किया—"मेरी घरनीपर मुग्ध हो जानेपर भी वह मेरी आत्माके उद्धारक थे, मेरे गुरू थे—मुझसे हर तरहसे बड़े और बूढ़े थे। तुमने अभी मेरी कहानी तो सुनी ही नहीं, इसीसे उनपर दोष मढ़ रही हो। पहले सारी घटनाओंको सुन तो लो!"

३

"वह चार हाथसे कुछ अधिक ही लम्बे, परम स्वस्थ, सोनेके रंगके दिव्य-देही द्विज थे। उनके शिरके केश बड़े-बड़े और गर्दनतक लहराते थे। उनके मुखपर छोटी-सी, अध-पकी दाढ़ी भी थी। उनके नेत्र बड़े-बड़े, डोरीले, और कुछ भेद-भरे-से थे। वह प्रथम दृष्टि हीमें कोई-न-कोई महान् पुरुष-से चमक जाते थे। उनका

व्यक्तित्व किसी ऋषिसे कम नहीं मालूम पड़ता था।

"आह! वह उपासक कितने बड़े थे, योगी कितने बड़े थे, यह वही बता-समझा सकता है जिसने उन्हें एक-न-एक बार 'जानने' का सौभाग्य प्राप्त किया हो। मुझे मिला था सौभाग्य, और मैंने उन्हें जाना और मैं धन्य हुआ। उन्हें मेरी अभागिनी पत्नीने भी जाना और उसके भी सौभाग्य धन्य हो गये।

"गुरुदेव हमारे खानदानी गुरु थे, जैसे प्रायः हिन्दू-परिवारोंके हुआ करते हैं। साथ ही, गुरुदेवके वंशका प्रायः प्रत्येक प्राणी तेजस्वी, तपस्वी और योग्य गुरु होता था। इसीसे हमार सारा गांव और वैसे और भी अनेक छोटे-बड़े ग्राम मेरे ही गुरुदेवको 'गुरुबाबा' कह कर पुकारते थे, उन्हींकी पुजा कर—उस ओरके लिये संवल रूपी-मंत्र भी उन्हींसे लेते थे। प्रायः प्रति वर्ष, एकबार, दो-दो चार-चार दिनोंके लिए वह हरेक गांवमें जाते थे, प्रत्येक चेला या चेलीको आशीर्वाद और सात्विक सन्देश सुनाते थे। वह गान और वाद्य-विद्याके विदित विशारद भी थे। इसीसे उनके आगमनके साथ ही साथ हमारे

अन्धकार-मय, नीरस, स्वर-शून्य ग्रामोंमें प्रकाश, अमृत और राग-रागिनियोंकी वृष्टि-सी हो जाती थी।

"गुरुदेव अन्त समयतक अविवाहित रहे। इसका कारण, जहांतक मुझे मालूम है, कम विचित्र नहीं था। मैंने सुना था कि, किशोरावस्थाकी समाप्ति और यौवनके आरम्भ कालमें वह किसी ऐसी कुमारी बालिकाके रूप और हृदयपर मुग्ध हो गये थे जो सामाजिक दृष्टिसे, उनसे कहीं नीची जाति और वर्णकी थी। मगर, गुरुदेव उसे प्यार करते थे—यह कहकर कि, प्रेममें जाति और वर्णका विचार करना प्रेमका अपमान करना है और प्रेमका अपमान करना परमात्माका अपमान करना है। वह बालिका भी हमारे युवक गुरुदेवको तन-मनसे चाहती थी।

"इसपर बड़ा कोलाहल मचा और हमारे गुरुदेवजीके संरक्षकों या अभिभावकोंने प्रणयी और प्रियतमा दोनों पक्षकी भरपूर भर्त्सना की। कहा जाता है, किसीने उस 'छोटी जाति' की छोकरीको पकड़कर मारा-पीटा भी। यह कहते हुए कि—'पतिता कहीं की! तू अपने निम्न

और घृणित आकर्षणोंसे भले आदमियोंका घर फूंकना चाहती है ? तुझे कालिख ही पोतना था तो तू अपनी जातिके मुंहपर क्यों न रीझी ? भाग, ससुरी कहीं की ! अब कभी उन......के साथ या खोजमें दिखाई पड़ी, तो, नाक काट कर नकटी कर दी जायगी, खरदूखनकी बहन सूर्पणखाकी तरह ।'

"उक्त घटनाके बाद लोगोंको पता चला कि, गुरुदेवके विरहमें, उस 'नीच छोकरी' ने, विष खाकर, अपने प्राण दे दिये । बाप रे ! लोगोंका कहना है, उसके मरनेकी खबर सुनते ही युवक गुरुदेव पागल-से हो उठे ! कई दिनोंतक उन्होंने अन्न छुआ तक नहीं । महीनों तक वह मौन, उदास, उद्वेलित और उद्विग्नसे रहे ।

"बस, तबसे अन्त समय तक वह अविवाहित रहे । साथ ही, उनके सभी परिचितोंका कहना है कि, वह दुराचारी कभी नहीं रहे । वह दूसरोंकी बधू, बेटी, बहनोंको 'मातृरूपेण' ही निहारते थे । मगर न जाने क्या सूझा उनके 'मुनि-मन' को, जो, उस दिन मेरी रूपवती महारानी पर वह मोह गये !"

४

"दीनानाथ पुरमें, मेरे घरसे उत्तरपर सटा हुआ, वह जो शिवालय है उसे मेरे पूर्वजोंने बनवाया था। गुरुदेव जब-जब हमारी ओर आते तब-तब उसी मन्दिरमें आसन जमाते थे। वहीं उनके चरणोंपर हमारे गांव-भरकी श्रद्धा दौड़ती हुई जाकर लोट आती थी। वहीं वह प्रातः-सायं संगीत-सुधा-स्रोत भी बहाते थे। हे स्वामी! कितने आनन्द आते थे गुरुदेवके सत्सङ्गसे! वह सितार-के कांपते हुए तारोंपर अपनी बड़ी-बड़ी दार्शनिक अंगु-लियोंको दौड़ाकर केवल झङ्कार ही नहीं पैदा करते थे, बल्कि, इच्छित राग-रागिनियोंको अपनी और हमारी आंखोंके सामने बुलाकर, नचाकर, हंसाकर, रुलाकर कंपाकर और मूर्छितकर छोड़ देते थे।

"उस दिन भी वही लीला हो रही थी। मन्दिरके बाहरी मण्डपमें, देवताके सामने, मृगासनपर, वीरासन बैठे गुरुदेव, सितार बजाकर, गा रहे थे। देवताके दाहिने

देवियां—गांवकी मूरख, अपढ़ अबलाएँ, माएँ थीं और बाएँ, बालकोंके पीछे पुरुषोंकी जमात बाबाजीके सितार और स्वरपर मुग्ध बैठी थी। पुरुषोंकी मण्डलीमें, मुखिया होनेके कारण मैं ही सबसे आगे था, मगर मेरी महारानी नववधू होनेके कारण—उधर कोनेमें—सिकुड़ कर, घूंघटमें सांस ले रही थीं। वह अन्य सभी स्त्रियोंसे हाथों दूर, उस मङ्गल-मयी मुस्कराती हुई लाल चुंनरीमें, छिपी हुई बैठी थीं।

"गुरुदेव गा रहे थे—गा रहे थे—उफ़! देखो ना, देखो ना! मेरे रोमाञ्च हो आया। मानों वह गान आज भी मेरे रोम-रोममें झंकृत हो रहा है। सबकी दोनों आँखें उनके मुखपर गड़ी हुई थीं और उनकी बड़ी-बड़ी डोरीली आंखें कभी हमारी, कभी बच्चोंकी, कभी ग्राम-देवियों और कभी देवताकी ओर न जाने किस स्वर्गीय मुद्रासे चमक-चमककर, न जाने कौन-सा जादू डाल रही थीं। वह गा रहे थे और उनके साथ उस देव-मण्डपमें अपनी स्थितिका दम भरनेवाली एक-एक सांस गा रही

थी......घूंघट.........को......पट......खो......ल...
...री.........तो...हे...रा...म...मि...लें...गे.........
घूंघट.........को......पट......खो...ल...?

"गुरुदेव राग गा रहे थे या रागिनी इसका हम साधारण प्राणियोंको कुछ भी ज्ञान नहीं था। फिर भी हमारे गांवका बच्चा-बच्चा मुग्ध हो गया उस गानपर। भोली-भाली स्त्रियां तो बेसुध हो उठी थीं और गद्गद भी। मुझे इसका ज्ञान तब हुआ, जब मैंने अपनी महारानीकी ओर देखा। उनके घूंघटका पट खुला हुआ था, उनका यौवन-ललित बदन विकसित था और उनकी मादक बड़ी-बड़ी आंखें, धवल-निर्लज्जतासे, गुरुदेवके देव-दुर्लभ मुख-पर गड़ी हुई थीं।

"मैं दंग रह गया! मगर, किसी दूसरे भावसे नहीं, मेरा मन ऐसा अविश्वासी नहीं था कि, मैं—बापरे बाप!—ऐसे महात्माकी महिमापर कीचड़ फेंकता। मैं तो दंग रह गया संगीतकी उस विश्व-विमोहिनी शक्तिपर!

"इसी तरह सात दिनोंतक संकीर्तन होता रहा और हम संगीत-सुधा पान करते रहे। इसी तरह सात दिनों

तक बराबर गुरुदेवने 'घूंघटको पट खोल री' गाया और बराबर मेरी महारानी उस संगीतकी डोरी पर चढ़कर उनके हृदय तक पहुंचती रहीं। मैंने अनुभव किया—कभी-कभी गुरुदेव भी उनकी ओर अपनी बड़ी-बड़ी आंखें विचित्र भावसे बिछा देते थे। मगर, मुझे क्या पता था कि उनके उस 'विचित्र भाव'-के झरोखेसे उनके मानसका कोई 'अनन्त अभाव' झांक रहा था। विधिगति अति बलवान।"

५

"रात थी और अंधेरे पक्षकी रात थी, पर वैसी रात जिसके आरम्भमें तो थोड़ा अंधेरा-झलकता है, मगर फिर प्रभात तक प्रकाश-ही-प्रकाश दिखाई पड़ता है। कार्तिक महीनेकी दूसरी या तीसरी निशा थी

"मेरी जब आंखें खुलीं उस समय अंधेरा नहीं प्रकाश था, मगर उस प्रकाशमें जो कुछ देखा उससे मेरी आंखोंके आगे अंधेरा छा गया। मैंने देखा, अपने स्थानसे मेरी महारानी न जाने कहां अलक्षित हो गई थीं। इस अभाव-

के एक ही दर्शनमें मैं धड़क गया, मानों किसीने सदाके लिए मेरी उस संगिनीको, उस प्रकाशित रात्रिमें, मुझसे छीन लिया हो। एक बार धड़कते मनसे मैंने पुकारकर यह जांचा कि वह छतके नीचे तो नहीं गई हैं, पर, उत्तरमें निराशा ही मिली। मैं पलंगसे उतरकर छतपर, छतसे निचले आंगनमें और आंगनसे खुले हुए बाहरी द्वार तक एक सांसमें आया, मगर वह वहां कहीं नहीं मिलीं। अब मेरा सन्देह पागल होने लगा, निराशा सर धुनने लगी। मैं सांस रोक कर दौड़ा उत्तरकी ओर, मन्दिरकी ओर।

"दूर ही से देखा, चन्द्रमाकी पिछली रातकी मीठी और ठण्डी जुन्हाईमें गम्भीरतासे हिलती हुई दो मूर्तियां मन्दिरसे नदी तटकी ओर जा रही थीं। देखते ही मैंने पहचान लिया—वे मेरे गुरुदेव थे, और मेरी महारानी।

"एक बार तो मैं सन्न रह गया, मुझे काठ-सा मार गया, पर तुरन्त ही मेरा सरल विश्वास, मेरे सौभाग्यसे, एक बार मेरे मनमें चमक उठा। मनने कहा—'मूर्ख! पहले ही अविश्वास क्यों! जरा आगे-आगे बढ़कर देख, अपराध-के पूर्व ही किसीके लिए दण्ड क्यों निश्चित करता है?'

"सरिता तटतक मैं उनके पीछे-पीछे दबे पांव, गया; उन्हींकी तरह गम्भीर-गतिसे, उन्हींकी तरह अविकृत मतिसे। :वहां देखा, किनारेपर मेरी महारानीका मुंह चन्द्रमाके आगे कर गुरुदेव खड़े हो गये ; उनसे कोई दो गजकी दूरीपर।

"उन्होंने मेरी मायाको संबोधित कर कहा—'मां! यह मेरे मनका मैल तुम्हारे मानसपर जम गया है जो तुम इस विजन निशामें अपने पतिको छोड़ मेरी मोहिनी रागिनीमें बंधी चली आई हो। तुम तो इस जलकी तरह धवल थीं मां! यह मैंने पहले ही दिन तुम्हारी आंखोंमें देखा था। मगर मेरी यह 'काई' तुम्हें स्पर्श करने और कलङ्कित करनेके लिए मचल पड़ी थी। इसीसे तो मैंने उन स्वरोंमें वह मोहन-मन्त्र फूँका था। इसीसे तो, मां! आज तुमने न जाने क्या कर डाला है।

'तुम्हें मालूम नहीं, देवि! मैं युवावस्थामें एक ऐसी बलिकापर मुग्ध था जिसे बड़े-बूढ़े 'नीच' कहा करते थे। उन्हीं बड़ोंके कारण ही मेरी उच्चता और उस बेचा-रीकी नीचता, चाहनेपर भी—इकट्ठी होकर किसी महान

पतन या उत्थानकी सृष्टि न कर सकी। वह विलख कर मर गई और मैं आह भरकर अलख जगाने लगा। इसके बाद मैं साधु हुआ, योगी हुआ, भावुक हुआ, भक्त हुआ —सब कुछ हुआ, मगर उस नीचकी वह मूर्ति मेरे मनके बाहर अब तक नहीं हु और वह, मां! ठीक तुम्हारी ही सी थी।

'मगर यह तो मेरे अपूर्ण मनको—अब सूझा है जब तुम मेरे सामने, मेरे जादूकी डोरीमें बंधकर, आ गई हो। अब मुझे होश हुआ है कि तुम तुम हो और वह वह थी। मैं तुम्हें, अपनी माता-सी पवित्र और पून्याको ताकने ही क्यों गया? मेरा मन ऐसे अपवित्र-पथ पर चला ही क्यों? चला ही अगर, तो, अब यह पापी कांप क्यों रहा है? नां—नां—एरे मन मेरे! हाथ-पांव तेरे तोरि हौं।

'एक बात और मां! और वह यह कि, मैंने हाथकी रेखाएँ और मुख देखकर यह जान लिया है कि, तुम्हारे पतिदेव भी विरक्त होंगे, वैरागी होंगे। अस्तु, अब तुम उनसे यह सारी कहानी और मेरा यह सन्देश कह देना कि,—साधु होनेके पहले शीघ्रता न करना। गृहस्थके

लिए पग-पगपर क्षमा है, पर साधुके लिए कहीं नहीं। यदि साधु होना हो, तो, किसी भी स्थानपर तीन दिनसे अधिक न ठहरनेकी प्रतिज्ञा करना। घर या कुटी कहीं भी न बनाना, अपने साथ कोई भी सामान न रखना तथा प्रत्येक स्थान पर अपने गुरुकी यह पतन-कहानी एक-एक बच्चेको सुना देना।.........'

\+ + + +

"बस इसके बाद मेरी महारानीके चरणोंपर माथा टेककर गुरुदेवकी वह देव-काया, तीरकी तरह पानीकी ओर झपटी। मैं भी बे-तहाशा झपटा उनको बचाने को। मगर वह—बह गये—वह डूब गये! मेरी तीव्र पुकार उनके कानोंमें पड़ी ही नहीं। मैं भी उन्हींकी ओर ध्यान लगाकर कूद पड़ा पानीमें और डूबकर उस नर-रत्नको ढूंढ़ने लगा। सारी रात इधरसे उधर, हांफ-हांफकर नदीको चञ्चल करता रहा, पर, वह न मिले—न मिले! लाचार, मैं खिन्न भावसे पानीके बाहर आया। पर, यह क्या? मेरी महारानी फिर कहां गायब हो गईं?

"बादमें, जब उनको भी इधर-उधर चारों ओर ढूंढ

थका, तब, यही मान लेना पड़ा कि, वह भी हमारे पीछे ही नदीमें कूदकर किसी ओर बह गई होंगी। और, अब तो कई बार सपनेमें मैंने उन्हें गुरुदेवके साथ देखा भी। देखा, उसी तरह वीरासन बैठे वह सितार बजा-बजाकर वही 'घूंघटको पट खोल री' गाते रहते हैं और वह—मेरी माया—अथकी आंखोंसे उनकी ओर ताकती रहती हैं।"

इसके बाद उस बट-वृक्षके नीचे एकत्र उस गांवके भक्त पुरुषों और भोली स्त्रियोंने देखा कि, वह नग्नप्राय साधु अपने गुरुदेव और अपनी महारानीकी स्मृतिमें उठकर, मुग्ध होकर, नाचने लगा। और नाचते-नाचते गांवसे दूर, गोधूलीकी धूमिल गोदकी ओर बढ़ने लगा। क्योंकि वह तीसरा दिन था और गुरुदेवकी आज्ञा थी कि तीन दिनसे अधिक वह कहीं न ठहरे।

गोधूलीमें, क्षणभर बाद—नाचते हुए दिगम्बरकी तरह वह विलीन हो गया। उसको जाते हुए उन खिलवाड़ी लड़कोंने भी देखा—जरा ठिठक कर। उसका अंतिम स्वर उनके कानोंमें बहुत देरतक गूंजता रहा—

'घूंघटको पट खोल री... तोहे राम मिलेंगे...'

अन्वेषणा
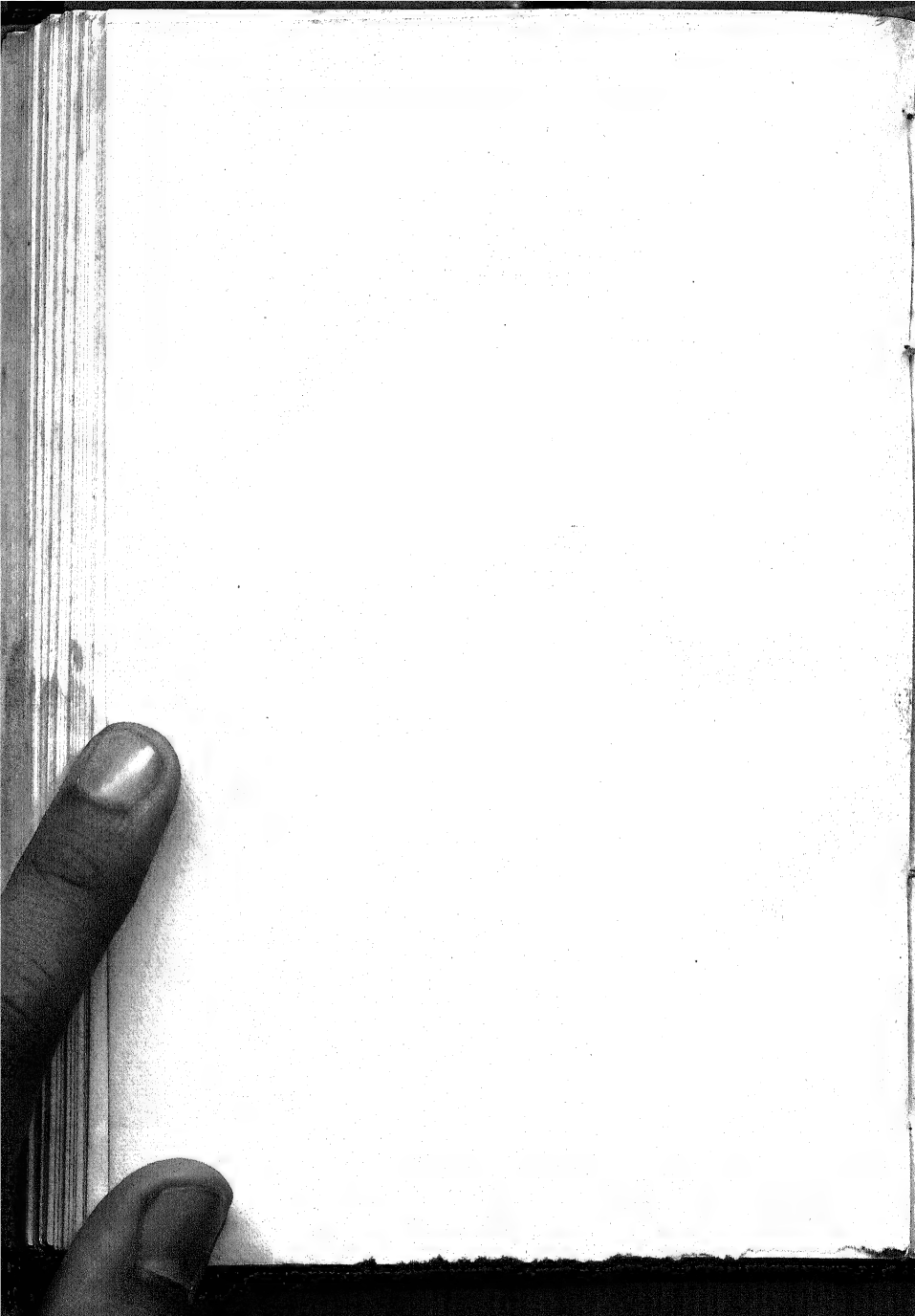
१

आस्तिक हो या नास्तिक, नर हो या नर-पशु, हिन्दू हो या मुसलमान अथवा ईसाई, जीवन उसीका धन्य है जिसने भगवानके अस्तित्वका अन्वेषण किया हो। भगवानको ढूंढ़नेवाला सच्चा आस्तिक स्वयं भगवान है,—नास्तिक सर्वशक्तिमान है,—नर नरोत्तम है,—नरपशु पशुपति है,—हिन्दू राम-कृष्ण है,—मुसलमान मोहम्मद है और ईसाई है शान्तिनिकेतन महात्मा ईसा।

उपर्युक्त विचार किसी औरके नहीं, मेरे हैं। संसार-

समुद्रके अनेक थपेड़े खा लेनेके बाद ही ऐसे विचार मानव-हृदयमें जागृत होते हैं। दुष्ट संसार अधिकतर लोगोंको आनन्दकन्द अखिलेशकी ओर नहीं जाने देता। मायाके मनोमोहक महलमें, चंचला लक्ष्मीके लोललोच-नोंकी कृपासे प्राप्त सांसारिक चहल-पहलमें और ऐहिक सुखोंके दलदलमें फँस जानेपर मन-मलिन्द महती महि-मामय मंगलमूर्ति भगवानके चरणकमलकी ओर कठिन-तासे जाता है। पचीस वर्षोंकी अवस्था तक मेरा ध्यान ईश्वरकी ओर नहीं आकर्षित हुआ था। उन दिनों पढ़ता था, लिखता था, हँसता था, खेलता था, खूब डटकर अच्छे-अच्छे पदार्थ खाता था, ठाटबाटके वस्त्राभूषण धारण करता था और उन्मादसे ओतप्रोत उद्वेलित यौव-नकी आत्म-विस्मृतिमयी रागिणी गाता था! ममतामयी माता थी, प्रेममूर्ति पिता थे, लाखोंकी सम्पत्ति थी, और सर्वोपरि जो चीज थी, वह मेरी प्राणवल्लभा, प्राणाधारा, पत्नी थी। मायाके इतने सजीव और सुन्दर प्रलोभनके रहते, वासनाके ऐसे आकर्षक खिलौनोंकी उपस्थितिमें

भगवानके ध्यानकी क्या अवश्यकता थी ? 'दुखमें सुमिरन सब करै, सुखमें करै न कोय ।'

आंखोंका वह नशा उतर गया, पर ठोकरें खानेके बाद । वासनाओंकी वह प्यास शान्त हो गई, पर संसार-सुख-सरिताके जीवनहीन हो जाकेके बाद । मैं जिस ग्राममें रहता था उसपर एक बार भयानक प्लेगका आक्रमण हुआ । बस, मायाके खिलौनोंको नष्ट करनेके लिए माया-मयकी एक ही भ्रू-भंगिमा पर्याप्त थी । उस प्लेगके विकराल गालका, पहले, मेरे पूज्य पिताको ग्रास बनना पड़ा, फिर माताको और अन्तमें उसको जिसे मैं अपनी जीवन-नाटिकाकी नागरी-नायिका, आनन्दकल्पनाकी अत्यन्त आकर्षक और अद्वितीय आख्यायिका और क्या-जाने क्या-क्या समझता था ! जब मेरी लाखकी गृहस्थी राख हो गई, जब मेरा सोनेका संसार मिट्टी हो गया, जब मेरे जीवन यात्राके सब साथी एक-एक कर बिछुड़ गये, जब मैंने संसार-समुद्रमें अपनी क्षुद्र जीवननौका-पर अपनेको निराश्रय एवं एकाकी देखा, तब मेरी आंखें खुलीं । मैंने देखा कि जलचर, थलचर, नभचर सभीको

एक-न-एक साथी था—बन्धु था। माता बसुन्धरा अपने पिता जलधिकी गोदमें बैठी हुई अपने भाई-बहनों—विविध नद-नदियों—से हँस बोलकर अपना मन बहला लेती थीं ; अपार पारावार अपने प्रियतम चन्द्रकी अनुपस्थितिमें 'हाहाकार' करते-करते आकाशको हिला देता था और उपस्थितिमें भैरव राग गा-गाकर ताण्डवनृत्य करता था ; अनन्त आकाश, दिनमें अपने ज्येष्ठ पुत्र मरीचिमालीके साथ खेलता—कभी स्वयं बादलोंका पहाड़ बनाता, कभी हाथी, घोड़े, ऊंट, मनुष्य और इन्द्रधनुषकी रचना करता था, और रात्रिमें, अनन्त-नक्षत्र-मण्डली-मण्डित मयङ्कको छातीसे लगाये समुद्रके दर्पणमें अपना प्रतिविम्ब देखकर, अपने आप आनन्दआन्दोलित होता था! विशाल विश्वमें, उस समय मैं ही अकेला था, बन्धु-विहीन था! अस्तु।

वासनाओंने कहा—'तुम शादी क्यों नहीं कर लेते ?' विवेकने कहा—'संसारमें वासनाएँ ही नहीं हैं, कुछ और भी हैं, उधर भी देखो!' हृदयने कहा—'सुना है कोई भगवान भी है, उसे क्यों नहीं पुकारते ? उसे लोग 'दीनबन्धु',

'अशरणशरण', 'भवभयहरण' और न जाने क्या-क्या कहते हैं। एक बार उसकी भी सुध लो।' मैंने कहा—अच्छी बात है। एक बार उसे भी ढूंढ़कर देख लूं, पर हाय!—

ख़ाबे ग़फ़लतसे ज़रा देखो तो कब चौंके हैं हम,
क़ाफ़िला मुल्के अदमको जब रवाना हो गया

२

वह प्रसिद्ध महात्मा एवं विख्यात कर्मवीर थे। मेरे गावंसे प्रायः दस कोसपर उनका निवासस्थान था। जहां-पर उनकी पर्णकुटी थी उसके चारो ओर प्रकृति-सुन्दरीका एक उद्यान—वनस्थल था। आसपासके सैकड़ों गावोंके दुखी उन्हींके पास अपनी करुण-कथा सुनानेके लिए आया करते थे। वह किसीको अपने उपदेशोंसे, किसीको सहानुभूतिसे, किसीको ओषधियोंसे और किसीको प्रेमपूर्ण सम्भाषणसे प्रसन्न किया करते थे। अनेक लोगोंने उनसे दीक्षा भी ली थी। वह करुणाकी मूर्ति थे, दयाके रूप थे और सच्चरित्रता, सज्जनता, सरलता एवं विश्व-

बन्धुताके अवतार थे। उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर मैंने कहा—"महात्मन, मेरे हृदयमें भयंकर क्रान्ति मची हुई है। मैं शान्ति चाहता हूं। कृपा कीजिये।"

उत्तर मिला—"भाई, शान्तिनिकेतनको पुकारो, करुणा-वरुणालयकी शरणमें जाओ! वहीं पर तुम्हें शान्तिके दर्शन मिलेंगे।"

"करुणा-वरुणालय ?—कहां हैं करुणा-वरुणालय ?"

"हैं तो वह सब स्थानोंपर, घट-घटमें। पर दिखाई नहीं पड़ते। उन्हें ढूंढ़नेके लिए हिमालयकी तरह अचल विश्वास चाहिए, मन्दाकिनीकी तरह निर्मल मानस चाहिए।"

"मुझको उनके दर्शन मिलेंगे ? 'मोसम कौन पतित, खल, कामी ?' मैंने आज तक कभी उनके अस्तित्वका विचार ही नहीं किया है।"

"मैंने पहले ही कहा है कि वह दया-सिन्धु हैं। सच्चे हृदयसे अपने कृतकर्मों पर पश्चात्ताप करनेवालेपर अवश्य प्रसन्न होते हैं—उन्हींको अपना हृदय दिखाओ, वही चाहेंगे तो कृपा करेंगे।"

"स्वामिन्! यह सिद्धांत शास्त्र-सम्मत है कि 'बिनु गुरु होहि न ज्ञान।' अतः आपही मेरी डूबती हुई नौकाके कर्णधार बनिए। मुझे रास्ता बतलाइए। मैं उन्हें ढूंढ़नेको तैयार हूं।"

"तुम्हारे पिता-माता हैं?"

"नहीं।"

"स्त्री है?"

"नहीं"—मैंने ठण्ढी सांस लेकर उत्तर दिया।

"राजपाट, धनधान्य, पुत्रकलत्र कुछ भी नहीं? तुम इस विशाल विश्वमें अकेले हो?"

"इस समय अकेला ही हूं। थे सब, पर सब कराल कालके गालमें विलीन हो गये। थोड़ी सम्पत्ति अवश्य बच रही है पर मैं उसे त्यागनेके लिए सर्वथा प्रस्तुत हूं।"

"अच्छी बात है। संसारकी अस्थायी विभूतियोंकी शोभा त्याग हीमें है। भगवानकी जब आज्ञा होगी तब अपनी सम्पत्तिको भी उनके चरणों पर चढ़ा देना। अभी अन्वेषण करो। उनके दर्शनोंके लिए स्वयं चेष्टा करनी होती है, किसीके सहारेसे वे नहीं मिलते।"

"उन्हें कहां ढूंढूँ और कैसे ढूंढूँ ?"

"पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर। पहले पूर्वकी ओर जाओ। अपनी आंखोंसे देखना और अपने विवेकसे काम लेना। पूर्वके अन्वेषणका जो परिणाम हो उसकी मुझे सूचना देकर तब किसी दूसरी ओर जाना। जाओ, ईश्वर तुम्हारी सहायता करे !"

"पहले मुझे दीक्षा दे दीजिए ।"

"नहीं। पहले उनका अन्वेषण करो। जगद्गुरुकी कृपा होने पर ही दीक्षा मिल सकती है।"

३

मैं खाता था जीनेके लिए और जीता था भगवानका अन्वेषण करनेके लिए। दिनरात, अनवरत, समयकी गतिकी तरह, मैं पूर्वकी ओर अग्रसर होने लगा। पथके प्रत्येक स्थानके प्रत्येक प्राणीसे मैं एक ही प्रश्न करता था—'भगवान कहाँ हैं ?' दुनिया मुझे देखकर मुस्कराती थी ! शायद पागल समझती थी। हाँ हाँ, जरूर पागल समझती थी ! तभी तो, दुनियाके लड़के तालियां बजाते

हुए मेरे पीछे दौड़ते फिरते थे! मैं उनकी सरलतापर मन ही मन हँसता और उनसे पूछता था कि—'भाई, भगवान कहाँ हैं ?' इसके उत्तरमें वे भी मुस्कराकर कहते थे—'भाई, भगवान कहाँ हैं ?' मानों बालकगण संसारके प्रतिनिधि बनकर मुझसे कह रहे थे कि संसार स्वयं भगवानके विषयमें कुछ नहीं जानता। यहाँ सभी जिज्ञासु हैं, सभी उनके अस्तित्वके अन्वेषक हैं।

'फिर ? भगवान नहीं हैं क्या ?' मैं सोचने लगा, कलकल करती हुई सरिता तो भगवानके अस्तित्वका अभिमान करती है, पर उसके तटपरकी वसुन्धरा—'भगवान नहीं हैं, भगवान नहीं हैं ?' क्यों कहती है ? अगर भगवान हैं तो माता वसुन्धराकी छाती पर होनेवाले आये दिनके अत्याचारोंको देखकर रुष्ट क्यों नहीं होते ? जरूर भगवान नहीं हैं। मगर देखो तो ! यह विशाल वारिधि किसकी सृष्टि है ? यह अनन्त आकाश किसकी विभूति है ? दिवा-सुन्दरीके मस्तक पर दिनमणि-मण्डित मुकुट कौन रखता है ? निशा-सुन्दरीका सितारा किसकी कृपासे चमकता है ? प्रति सायंकाल, पदच्युत सम्राटकी

तरह अपमानविदग्ध, श्रीहत सूर्य किसकी आज्ञासे पश्चिमकी ओर भागता है? मयंकके मनोविनोदके लिए शान्तिमयी रजनीकी रचना किसने की है? रातको चन्द्रमाके बैठनेके लिए, आकाशके प्रशस्त प्रांगणमें मुक्ता-जटित चांदनी कौन बिछा जाता है? समुद्र किसके भयसे 'हाय! हाय' किया करता है? बड़वानल किसकी कोपाग्निसे जला करता है? भगवान जरूर हैं। उनका अन्वेषण करनेके लिए हृदयमें अधिक बलकी आवश्यकता है।

इसी प्रकार मेरा दुर्बल मन भगवानके अस्तित्वके विषयमें तर्क-वितर्क किया करता था।

* * * *

मुझसे पूर्वके कुछ लोगोंने भगवानका निवास-स्थान 'मन्दिर' बताया। अतः मैं एक मन्दिरके द्वारपर जाकर भगवानको ढूंढ़ने लगा। मैंने पुजारीसे प्रश्न किया—"क्यों महाराज, भगवान कहां रहते हैं?"

पुजारी—यहीं बचा, वह देखो! तुम्हारे सामने ही तो महाप्रभु—'मोरमुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल' धारण किये विराजमान हैं।

मैं—यह तो भगवानकी कल्पित मूर्ति मात्र है। कभी उनके दर्शन भी होते हैं ?

पुजारी—दर्शन होते क्यों नहीं हैं ? हृदयमें शक्ति चाहिए। भगवानकी सेवा करो, तब दर्शन मिलेंगे।

पुजारीकी आज्ञा एवं इच्छानुसार वर्षों तक मन्दिरमें रहकर मैंने भगवानके दर्शन पानेकी चेष्टा की, पर सब व्यर्थ। भोगकी मनों मिठाई खाकर भी प्रभु न प्रसन्न हुए। ठाकुरके नहलाने-धुलाने और आरती करनेका कुछ भी फल न हुआ। वहां मैंने एक बातका और भी अनुभव किया। भगवानके पुजारी भगवानके नाम पर व्यापार भी करते थे। किसीसे रुपये लेकर उसे पुत्र होनेका वरदान देते, किसीसे चढ़ावा लेकर उसके दुख दूर करनेकी प्रतिज्ञा करते और न जाने क्या-क्या करते थे। मुझे पूर्वके भगवानसे—उपर्युक्त अनेक कारणोंसे—घृणा हो गई। मैं महात्माकी कुटी पर लौट आया और उनसे पूर्वके अन्वेषणका परिणाम कह दिया कि—"पूर्ववाले भगवानके नाम पर दुनियामें व्यापार करते हैं, अपने पेटकी पूजाका प्रबन्ध करते हैं !"

४

दूसरी बार, गुरुदेवके आज्ञानुसार पश्चिम दिशाकी ओर गया। उधर अधिकतर उन्हीं लोगोंकी बस्ती थी जो अपनेको मुसलमान कहा करते हैं। उन्होंने 'मसजिद'-की ओर इशारा कर कहा—'यही खुदाका घर है।' खुदाके घरके ठेकेदार मुल्लाने मुझे देखकर पूछा, "क्या चाहता है?"

"खुदाके दर्शन।"

"देखनेमें तो तू काफिर जान पड़ता है, क्यों?"

"काफिर किसे कहते हैं?"

"हिन्दूको। काफिरोंको खुदाकी कदमबोसीका मौका नहीं मिलता।"

"क्यों?"

"क्योंकि वे काफिर हैं। तू पहले मुसलमान हो जा फिर खुदाकी तलाश कर।"

मुल्लाका विश्वास सच्चा हो सकता है, पर मुझे उसके विश्वासपर विश्वास नहीं हुआ। मैं खुदाके घरके

दर्वाजेपरसे चुपचाप लौट पड़ा और दूसरे मुसलमानोंसे खुदाका पता पूछने लगा। पर, अफसोस, केवल हिन्दू होनेके कारण उन लोगोंने मेरा बहुत अपमान किया। मुझको देखते ही वे 'काफिर काफिर' चिल्लाने लगते थे। लाचार, मुझे लौट आना पड़ा। मैंने गुरुदेवसे निवेदन किया—

"पश्चिमके लोग भगवानका नाम लेकर अपने मतोंका जबरदस्ती प्रचार करते हैं। वे अपनी हठधर्मीको भगवान कहकर पूजते हैं!"

५

तीसरी बारकी यात्रामें मेरा पाला ईसाई मजहब-वालोंसे पड़ा। उस बार चर्चमें भगवानको ढूंढ़नेका प्रयत्न करना पड़ा! बहुत दिनों तक एक पादरीके साथ रहनेके बाद मैं हताश होकर गुरुदेवकी कुटीपर लौट आया और उनसे बोला कि—"या तो ईसाइयोंका धर्म ही झूठा है या उन्होंने अपनी दुर्बलताओंके फेरमें पड़कर उसे झूठा बना दिया है। मैंने देखा, प्रत्येक गिरजाघर ईश्वर-भजनका

नहीं, वासनाओंके विकासका स्थान था। चर्चोंमें नव-युवतियाँ अपने प्यार करनेवालोंको ढूंढ़ा करती हैं! चर्चोंमें ईश्वरके नामपर मद्यपान होता है !! किसी-किसी चर्चके नायक तो सेवक बनते हैं ईश्वरके और पांव पूजते हैं दुष्टाचरणोंके !!!"

"फिर", मैने गुरुदेवसे कहा, "संसारमें इस समय जो भयङ्कर वैषम्य फैला हुआ है, उसका सम्पूर्ण उत्तर-दायित्व इन्हीं, चर्चके उपासकों, पर है। आज ईसाई सभ्यताके नामपर संसारको नरककी ओर घसीट रहे हैं, परम अहिंसा-प्रिय महात्मा ईसाके भक्त ही हिंसाके बलपर विश्व-शान्तिकी हत्या कर रहे हैं! चर्चवाले भगवानको क्या जानें? वह तो रुपयेको जानते हैं और जानते हैं संसारके सुख-विलासोंको। उन्हें दूसरोंका सुधारक बननेके पहले आत्मसुधार करना चाहिए। वे भगवानसे बहुत दूर हैं!"

गुरुदेवने मेरी बातें सुनकर कहा—

"अच्छा तुम इसी समय दक्षिणकी ओर चले जाओ। उधर भयंकर बाढ़ आनेके कारण 'अकाल' पड़ गया है। बीमारियां भी अनेक प्रकारकी फैल गई हैं, लोग अन्न एवं

ओषधिके अभावसे मर रहे हैं। अस्तु इस समय जाने दो भगवानको—कुछ मनुष्योंकी भी सेवा करो। मनुष्य भगवानकी परमप्रिय और सर्वश्रेष्ठ कृति है।"

६

दक्षिणके पंचतत्वोंके पुतलोंकी बाढ़के कारण जो दुर्दशाएं हो रही थीं उन्हें देखकर मेरा हृदय पानी-पानी हो गया। कहीं पर गांवका गांव बह गया था कहीं पर समूचा नगर भीमा तरंगिणीके उदरमें खड़ा कांप रहा था। जिनके पास अन्न नहीं था वे बेचारे तो भूखों मर ही रहे थे साथ ही वे भी मर रहे थे जिनके पास अन्न-की राशि थी। बाढ़के उदरमें जाकर सबका सब अनाज दुर्गन्धमय और रोगाकर बन गया था! लोगोंके पास पहननेको वस्त्र नहीं, खानेको अनाज नहीं, पीनेको स्वच्छ जल नहीं और क्षण-भर विश्राम करनेका कोई साधारण स्थान तक नहीं था! भयंकर रोगके प्रकोपसे समूचा दक्षिण प्रान्त त्राहि! त्राहि! पुकार रहा था! बड़ी ही करुणाजनक अवस्था थी।

मैंने अपने खर्चसे घरसे अन्न और वस्त्र मंगाकर लोगोंमें वितरण करना आरम्भ किया। उन दुखी मनुष्यों-की सेवामें मैं ऐसा तन्मय हो गया कि मेरे हृदयसे भगवानके अन्वेषणका विचार ही लुप्त हो गया!

*　　　*　　　*　　　*

उस समय दिवा-सुन्दरी संध्या-सुन्दरीका अभिनन्दन करने के लिए जा रही थीं; भगवान मरीचिमाली अपनी प्रिया पश्चिमाके पास दिनभरकी क्लान्ति मिटानेके विचारसे जा रहे थे; आकाशके पक्षी अपनी दिनभरकी कमाई लेकर अपने भूखे बच्चोंके पास प्रेमपूर्ण हृदयसे लौट रहे थे और मैं घोर परिश्रमसे थका अपने डेरेकी ओर बढ़ रहा था। मेरे पासका सब अनाज दीन-दुखियोंके पीड़ित उदरमें जा चुका था केवल पाव डेढ़ पाव चने बच गये थे। उन्हें स्वयं खाने के लिए पोटलीमें बांधकर मैंने अपने साथ ही ले लिया था। जिस रास्तेसे मैं लौट रहा था उसके एक ओर वह राक्षसी नदी भी थी जिसके कारण दक्षिण प्रान्तमें हाहाकार मचा हुआ था। उस समय भी नदीका पागलपन कम नहीं हुआ था, उस समय भी उसके प्रखर

प्रवाहमें विविध प्रकारके जीवजन्तु और लता वृक्षादि इधर-उधर भटक रहे थे !

भूख जोरसे लग गई थी, पर डेरा अभी एक कोस पर था। मैंने बिचार किया कि नदीके तटपर बैठकर पहले चनोंको उदर भगवानके चरणों पर चढ़ा लूं तब डेरेकी ओर बढ़ूँ। पर यह क्या ! नदीमें वह किसकी झोपड़ी बही चली जा रही है ? अरे ! उसपर तो तीन-चार प्राणी भी दिखाई पड़ रहे हैं। हाय ! हाय ! अभागे कैसी कातरतासे चिल्ला रहे है ! इन्हें बचाना ही होगा, चाहे जैसे हो। मेरे पास एक पतली, पर बहुत बड़ी, सूतकी रस्सी थी। कमर तक जलमें घुसकर अपनी पूर्ण शक्तिसे मैंने उस रस्सीको उन गरीबोंकी ओर फेंका। ओ हो हो ! डूबतेको तिनकेका सहारा कैसे मिलता है यह मैंने उस समय देखा। रस्सीके हाथमें आते ही वे इतने प्रसन्न हुए मानों उनके हाथोंमें विश्वका वैभव आ गया हो !

उफ ! कैसा करुणामय दृश्य था !! अर्धनग्ना जननी अपने शिशुको छातीसे लगाये मारे भूखके तड़प रही थी। बालकका पिता भी पास ही था, पर था विवशताके कठोर

पंजेमें। वह पिता होकर भी अपने शिशुकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता था, पति होकर भी अपनी अर्धाङ्गिनीकी रक्षा नहीं कर सकता था। सबके सब भूखकी भयानक ज्वालासे जल रहे थे। तट पर आते ही वह पुरुष, मानवताका हृदय कम्पित करते हुए, पृथ्वी और आकाशको अपने करुण कण्ठसे करुणामय बनाते हुए कहने लगा—

"कुछ खानेको दो! हम चार दिनोंसे इसी तरह प्रकृतिकी दानवतासे सताये जा रहे हैं। मेरा बच्चा मारे भूखके प्रायः मर ही गया है। भाई! हमारी रक्षा करो। भगवान तुम्हारा भला करेगा।"

मेरे हिस्सेके चनोंको देखकर दुर्बल बालक मुस्कराने लगा, मानों भगवान स्वयं मुस्करा रहे थे! चार दाने बच्चेके मुखमें डालकर दुखिया माता प्रसन्न-बदन होकर नाचने लगी, मानों मूर्तिमती ईश्वरकी शक्ति नाच रही थी! और—और वह पुरुष मुझसे लिपटकर प्रेम-गद्गद होकर, इस तरह रोने लगा मानों भगवान ही मुझे छातीसे लगा कर रो रहे थे!!!

७

उसी समय अचानक मेरे मुखसे निकल पड़ा—"मनुष्य ही भगवान है।"

दक्षिणकी यात्रा समाप्त कर गुरुदेवके आश्रमपर लौटा। इस बार मेरे मुखपर प्रसन्नता नाच रही थी ओर हृदयमें उल्लास भरा हुआ था। क्योंकि मैंने भगवानको प्राप्त कर लिया था।

आश्रम सूना पड़ा था, गुरुदेव नहीं थे। उनके हाथ-का लिखा एक पत्र कुटीमें पड़ा था। उसमें लिखा था—

"तुम्हारा अन्वेषण सफल हो गया। सचमुच मनुष्य ही भगवान है। अब मैं तुम्हें अपना उत्तरधिकारी बनाकर समाधि लेने जा रहा हूं। इसका ध्यान रखना कि संसारमें सबसे बड़ा मन्त्र है—"वसुधैव कुटुम्बकम्।"

उग्र-लिखित

प्रसिद्ध, सचित्र, पुस्तकें

चन्दहसीनोंके ख़ुतूत	।।।)
चाकलेट	१)
चिनगारियाँ (ज़ब्त होगई, अलभ्य)	
दिल्लीका दलाल	१॥)
दोज़ख़की आग	१॥)
बलात्कार	१॥)
बुधुआकी बेटी	३)
इन्द्रधनुष	१॥)
चार बेचारे	१॥)
महात्मा ईसा	२॥)

बीसवीं सदी पुस्तकालय,

गऊघाट, मिर्ज़ापुर सिटी।